मोतीमाला का उन्नीसवाँ रत्न

भाग्य-चक्र

लेखक—
श्रीयुत सुदर्शन

प्रकाशक-
मोतीलाल बनारसीदास
हिन्दी-संस्कृत-पुस्तक-विक्रेता
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

द्वितीय संस्करण] १९४० [मूल्य १।)

प्रकाशक
सुन्दरलाल जैन, मैनेजिंग
प्रोप्राइटर, मोतीलाल बनारसीदास
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर ।

मुद्रक
शान्ति लाल जैन
बम्बई संस्कृत प्रेस,
शाही मुहल्ला, लाहौर ।

पात्र-परिचय

पुरुष

हीरालाल	पंजाब का एक प्रसिद्ध लखपति
शामलाल	हीरालाल का भाई
शंकरदास	एक बदमाश
दुर्गादास	एक ग़रीब आदमी
सूरदास	काशी का एक अंधा गवैया
बाटलीवाला	कालीदास नाटक कंपनी का पारसी मालिक
जयकृष्ण	बाटलीवाला का सहकारी
दलीप	हीरालाल का बेटा
दीपक	दलीप का दूसरा नाम
भंडारी	एक इंजीनियर

नौकर, दरबान, साधु, यात्री, धोबी, दरज़ी, दर्शक, विद्यार्थी, पुलिस के आदमी, जासूस, डाकिया, डाक्टर, मसखरा।

स्त्री

लाजवन्ती	शामलाल की स्त्री
कल्लो की माँ	सूरदास की दासी
रूपकुमारी	एक शिक्षित युवती
यशोदा	रूपकुमारी की माँ

आया, साधनी, लीला, नरसें।

भाग्य-चक्र

भाग्य-चक्र

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—लाहौर में शामलाल का घर

समय—प्रातःकाल नौ बजे

[शामलाल मेज़ के सामने बैठा है और शंकरदास से बात-चीत कर रहा है।]

शाम०—शंकरदास! तुम कहोगे, यह कैसा आदमी है? मगर मुझे अब भी विश्वास नहीं होता, कि भाई साहब ऐसा अनर्थ कर सकते हैं!

शंकर०—अब मैं क्या कहूँ-!

शाम०—(सुना अनसुना करके) मैंने उनकी जितनी सेवा की है, यह वह भी जानते हैं। सारा सारा दिन घूमता फिरता हूँ। रात के दो-दो बजे आकर खाना खाता हूँ। उनका जितना कार-बार है,

मैंने संभाला हुआ है। दो दिन दफ्तर न जाऊँ, तो सारा काम चौपट हो जाए। एक दिन स्वयं कहते थे, मेरा सारा कार-बार तू ही करता है।

शंकर०—अरे भाई! यह भी क्या कहने की बातें हैं? सारी दुनिया जानती है!

शाम०—और इसका पुरस्कार यह है, कि जब अपना दान-पत्र तैयार करने लगे तो मेरा ध्यान तक न आया? सब सम्पत्ति बेटे के नाम-मेरे नाम एक पैसा भी नहीं!

शंकर०—कहते होंगे, नौकरी करता है, वेतन लेता है। अब और क्या दूँ?

शाम०—मगर नौकर नौकरी करता है, मालिक के लाभ-हानि की परवा नहीं करता। अगर मैं भी नौकरी करता, तो श्रीमान् जी के लाखों रुपये बैंक में जमा न होते।

शंकर०—इसमें क्या संदेह है, अगर कोई चालाक आदमी होता, तो पहले अपना घर भरता।

शाम०—हम धर्मात्मा ही बने रहे।

शंकर—मगर आज-कल धर्मात्माओं को पूछता ही कौन है?

शाम०—तुम्हारी यह बात झूठ! मैं मानता हूँ, कि समय बदल गया है। मगर अब भी ऐसे लोगों का अभाव नहीं, जो धनवानों की

बात भी नहीं पूछते, महात्माओं के चरण चूमते हैं। सच पूछो, तो संसार ऐसे ही महात्माओं के बल पर खड़ा है।

शंकर०—लोग धर्म का सम्मान करते हैं, इसमें सन्देह नहीं, मगर उसी समय तक, जब तक उसके पास पैसे हैं। परन्तु इधर धर्म की जेब ख़ाली हुई, उधर लोगों की आँखें बदल गईं! आपने मेरा अभिप्राय समझा?

शाम०—(मुस्कराकर) कहे जाओ।

शंकर०—एक दृष्टान्त लीजिए। आपके पास चार आदमी अच्छे वस्त्र पहनकर और मोटर में बैठकर आते हैं, और किसी आश्रम या अनाथालय या विद्यालय के लिए दान माँगते हैं। आप पाँच-सात सौ रुपया दे देते हैं। मगर जब आपके पास कोई ब्राह्मण नंगे-पाँव नंगे-सिर, फटी-पुरानी धोती पहने आता है, तो पहले तो महाराज! आपके दरबान उसे घर में घुसने नहीं देंगे। और फिर अगर उनका दिल ग़रीब की मिन्नत-समाजत से पिघल गया, और उन्होंने उसे आपकी सेवा में उपस्थित होने का अवसर दे दिया, तो भी आप उसे क्या देंगे? दो-चार रुपये। और वह भी उपेक्षा से। मैं पूछता हूँ, यह क्यों? माँगने दोनों आए थे, धर्म दोनों थे, आवश्यकता दोनों की सच्ची थी।

शाम०—(दिलचस्पी लेते हुए) ठीक!

शंकर०—मगर पहले आदमियों को आपने सम्मान भी दिया,

धन भी दिया। दूसरे आदमी को न सम्मान दिया, न धन दिया। यह क्यों! केवल इसलिए, कि पहली अवस्था में धर्म कोट-पतलून पहनकर और मोटर में बैठकर आया था। दूसरी अवस्था में धर्म नंगे-पाँव आया था, और पैदल चलकर आया था।

शाम०—(मुस्कराकर) यह तो तुमने एक नई बात कह दी।

शंकर०—आज आप अमीर हैं, आपके हाथ में भाई का काम-काज है, आपका सभी मान करते हैं। कल आप ग़रीब होजाएं, तो कोई आपकी बात भी न पूछेगा।

शाम०—मगर मन को तो संतोष रहेगा।

शंकर०—सोलहों आने सच! मगर कठिनाई यह है, कि यह मन का संतोष आज-कल के युग में किसी के काम नहीं आता।
[शामलाल एक पैंसिल के साथ खेलता है, और कुछ सोचता है।]
और मेरी तो यह धारणा है, कि आज-कल यह मन का संतोष भी चाँदी-सोने के तोल बिकता है। जिसके पास चाँदी-सोना नहीं, उसके पास संतोष कहाँ? ज़रा सोचिए!

शाम०—(गम्भीरता से) मैं तुम्हारी बात नहीं सुनना चाहता।

शंकर०—बहुत अच्छा!

शाम०—तुम्हारी युक्तियों में बल है, मगर सार नहीं।

शंकर०—मगर······

शाम०—भाई साहब ऐसा कभी नहीं कर सकते।

शंकर०—परमात्मा करे, ऐसा ही हो।

शाम०—और मुझे विश्वास है, ऐसा ही होगा। मैं अपने भाई को तुमसे अधिक जानता हूँ—तुमने उन्हें दूर से देखा है, मैंने उन्हें पास से देखा है।

शंकर०—(उठकर जाने को तैयार होते हुए) मगर कई वस्तुएं ऐसी भी हैं, जो पास से दिखाई नहीं देतीं।

शाम०—मैं पूछता हूँ, तुम यह विष मेरी खोपड़ी में क्यों भरना चाहते हो?

शंकर०—(जाते जाते रुक कर) मैं आपकी खोपड़ी में विष नहीं भरना चाहता, मैं आपको, और आपके भविष्य को विनाश से बचाना चाहता हूँ—आपको याद है आपने मेरे साथ दो बार भलाई की है।

शाम०—मगर मुझे अब भी विश्वास नहीं होता, कि भाई साहब मेरे साथ ऐसा अन्याय कर सकते हैं।

शंकर०—इसका कारण यह है कि आप सीधे आदमी हैं।

शाम०—(क्रोध से) मैं सीधा हूँ, मगर मैं मूर्ख नहीं हूँ। अगर वे मुझे मूर्ख समझते हैं, तो यह उनकी भूल है।

शंकर०—(बैठ कर) मेरा कहना केवल यह है, कि आप अपना प्रबन्ध कर लें।

शाम०—(सोचकर) देखो ! क्या तुम मुझे कल मिल सकते हो ?

शंकर०—कहाँ ?

शाम०— यहीं ।

शंकर०—बहुत अच्छा ! मैं उपस्थित हो जाऊँगा ।

[शंकरदास विजयी ढंग से चला जाता है । शामलाल उठकर इधर-उधर टहलता है और सोचता है—शायद यह, कि उसे क्या करना चाहिए ? कुछ देर के बाद, फिर आकर अपनी कुरसी पर बैठ जाता है । और अपनी घड़ी की जंजीर के साथ खेलने लगता है । इतने में उसकी स्त्री लाजवन्ती धीरे-धीरे आती है, और उसकी कुरसी के पीछे खड़ी हो जाती है । शामलाल चुप-चाप उसी तरह अपने विचार में निमग्न रहता है ।]

लाजवन्ती—आज यह महात्मा जी इस तरह समाधि लगाए क्या सोच रहे हैं ?

शाम०—(मुस्करा कर) कुछ नहीं ।

लाजवन्ती—(सामने आकर) झूठ !

शाम०—मानो, तुम मेरे मन का हाल भी जान सकती हो ?

लाज०—मैं यह नहीं जान सकती, कि आप क्या सोच रहे हैं ? मगर मैं यह जान सकती हूँ, कि आप जो कुछ सोच रहे हैं, उसे मुझसे छिपा रहे हैं ।

शाम०—(उसी तरह अपनी घड़ी की जंजीर को अंगुली के गिर्द घुमाते हुए) लाज !

लाज०—(साथ की कुरसी पर बैठकर और पति से जंजीर छीनकर) बताइए, क्या सोच रहे थे ?

शाम०—मैं सोच रहा था, अगर आज भाई साहब मुझे नौकरी से जवाब दे दें, तो मैं क्या करूँ ?

लाज०—(जंजीर लौटाते हुए) ऐसी बातें सोचने से तो यही अच्छा है, कि आप अपनी जंजीर के साथ खेलते रहें।

शाम०—(चिन्तानिमग्न) अब तो मेरे लिए कहीं नौकरी मिलनी भी कठिन है। इस आयु में नौकरी कहाँ ?

लाज०—मगर आपको उन पर संदेह कैसे हो गया ? आप तो कहा करते हैं, कि ऐसा भाई दुनिया भर में किसी का न होगा।

शाम०—(ठंडी आह भर कर) यह मेरी भूल थी।

लाज०—(गम्भीरता से) बात क्या है ?

शाम०—भाई साहब ने अपना दान-पत्र लिखा है, कि उनके बाद उनकी सारी सम्पत्ति दलीप को मिले। यह समाचार अभी-अभी मुझे मिला है।

लाज०—और आपने इस पर विश्वास कर लिया है ?

शाम०—और क्या करूँ ?

लाज०—भगवान् पर भरोसा रखकर अपना काम करते जाइए।

आपके भाई साहब आदमी हैं, कसाई नहीं हैं, जो हमारे गले पर इस तरह छुरी चला देंगे। और मैं तो इससे भी आगे जाने को तैयार हूँ। अगर वह अपनी सारी जायदाद अपने पुत्र को देना चाहते हैं, तो इसमें अनर्थ ही क्या है? हम काम करते हैं, वेतन लेते हैं।

शाम०—(क्रोध से) तो तुम्हारा यह ख्याल है, कि मैं जो दिन-रात बैल के समान काम करता रहता हूँ, उसका पुरस्कार केवल मेरा वेतन है?

लाज०—(शान्ति से) और आपका यह ख्याल है, कि आप जो काम करते हैं, वह अपने भाई पर उपकार करते हैं? पाँच सौ रुपया महीना साधारण वेतन नहीं है।

शाम०--तुम्हारे लिए बहुत होगा, मेरे लिए बिलकुल कम है।

लाज०--भगवान ने गीता में अर्जुन से कहा है........।

शाम०--रहने दो-मैं तुम्हारी गीता नहीं सुनना चाहता।

लाज०--यह और भी बुरा! (कुछ देर चुप रहने के बाद) अच्छा एक बात! क्या आपने उस आदमी को फिर बुलाया है?

शाम०—(सोचकर) हाँ।

लाज०--मैं कहती हूँ, उससे न मिलिए! वह बुरा आदमी है।

शाम०—मगर बुरे आदमी से मिलने में क्या हानि है?

लाज०--मैंने आज ही एक किताब में पढ़ा है, कि बुराई पहले

अजान आदमी के समान मिलती है और हाथ बांधकर नौकर की तरह खड़ी हो जाती है। फिर मित्र बनती है और निकट आ जाती है। फिर मालिक बनती है, और आदमी पर सवार हो जाती है और उसको सदा के लिये अपना दास बना लेती है।

शाम०—यही तो स्त्रियों में ऐब है। जो कुछ पढ़ती हैं, उसे गिरह में बांध लेती हैं।

लाज०—तो क्या पुरुषों का यही गुण है, कि जो कुछ आज पढ़ते हैं, उसे कल भूल जाते हैं।

शाम०—मैं तुम्हारे साथ तर्क-वितर्क नहीं करना चाहता।

लाज०—मगर इतना सोच लो, कि वह आदमी काले सांप से भी भयानक है। इसलिये उससे मिलना काले सांप के साथ खेलना है। कहिए, नहीं मिलूँगा।

शाम०—ज़रा सुन तो लो—

लाज०—कहिए, नहीं मिलूँगा।

शाम०—(संकोच के साथ) अच्छा ! नहीं मिलूँगा।

[टैलीफ़ोन की घंटी बजती है, शामलाल उठकर दूसरे कमरे में चला जाता है। लाजवन्ती भी स्थिति पर सोचती हुई अन्दर चली जाती है।]

———

दूसरा दृश्य

स्थान—शंकरदास का घर

समय—दुपहर

[शंकरदास और उसका मित्र दुर्गादास]

शंकरदास—मेरी बात का उत्तर दो—तुम्हें रुपये की ज़रूरत है ?

दुर्गादास—अरे भाई ! तुम ज़रूरत कहते हो, मैं कहता हूँ, अगर रुपया न मिला, तो शायद रायबहादुर मुझ पर नालिश कर दें, शायद मेरा मकान बिक जाए, शायद मैं कहीं मुँह दिखाने के योग्य भी न रहूँ ।

शंकर०—तो मेरे साथ मिल जाओ, दिनों में मालामाल हो जाओगे ।

दुर्गा०—मगर मेरा मन कहता है, कि यह पाप है ।

शंकर—भाई मेरे ! संसार में ग़रीबी सबसे बड़ा पाप है । इस पाप से बचने के लिए जितने भी पाप कर लो, सब पुण्य हैं । ग़रीब आदमी ज़रा सी भूल करता है, तो समाज अपनी सारी शक्तियां इकट्ठी करके उसके विरुद्ध खड़ा हो जाता है । अमीर आदमी

पाप भी कर ले, तो समाज उसे कुछ नहीं कहता। मानो पाप केवल ग़रीब करता है। बल्कि ग़रीब जो कुछ करता है, वह पाप है। बल्कि ग़रीब संसार का जीता-जागता पाप है।

दुर्गा०—(उठकर और हाथ बाँधकर) अच्छा नमस्कार!

शंकर०—(आश्चर्य से) मेरी युक्तियों का यही उत्तर है?

दुर्गा०—मुझे रुपये की ज़रूरत है, मगर पाप के रुपये की ज़रूरत नहीं।

शंकर—सोच लो। मेरी आँखें तो वह दिन सामने देख रही हैं जब तुम्हारा नाश हो जाएगा।

दुर्गा०—किसी को नाश करने से यह कहीं अच्छा है, कि आदमी अपना आप नाश कर ले। (प्रस्थान)

[शामलाल का प्रवेश]

शंकर०—मैं आपकी ओर जाने ही वाला था।

शाम०—देखो शंकरदास! मैं मानता हूँ, कि तुम जो कुछ कहते हो, मेरे भले के लिए ही कहते हो। मगर फिर भी—मैंने निश्चय किया है, कि मैं चुप रहूँ। मेरा कर्तव्य मेरे साथ, उनका अन्याय उनके साथ।

शंकर०—(सिर हिलाकर) यह आपका नहीं, आपकी स्त्री का निश्चय है।

शाम०—क्या मतलब?

शंकर०—ऐसी धर्म अधर्म की बातें स्त्रियां ही किया करती हैं।

शाम०—यह तो ठीक है।

शंकर०—श्रीमान् जी ! स्त्री हंसने-खेलने और मन बहलाने की चीज़ है, मगर सलाह-मशविरा करने की चीज़ नहीं है। जो उनकी राय पर चलता है, वह संसार में कभी उन्नति नहीं करता।

शाम०—मेरा ख्याल है, दुनिया में पुरुष का सबसे ज्यादा भला चाहने वाली उसकी स्त्री है। जो उसकी राय पर चलता है, उसे कभी कष्ट नहीं होता।

शंकर०—अगर आपकी स्त्री दया-धर्म की मूर्ति है, तो वह कभी आपको सलाह न देगी, कि आप ग़रीबों का लहू चूस-चूस कर मोटे होते जाएं ? क्या वह आपसे कहेगी कि आप किसी का घर नीलाम कराएं ? या जो कुछ उसके पास है, छीन लें ? अर्थात् आप उनका कहा मानें, तो आपको अपना साहूकारा लपेटकर परे रख देना पड़ेगा।

शाम०—(निरुत्तर होकर) यहाँ आकर मेरा मन फिर डाँवाडोल होने लगा।

शंकर०—अगर आपकी जगह मैं होता, तो कुछ करके दिखा देता। मगर आप महात्मा आदमी हैं।

शाम०—अच्छा बताओ, तुम क्या करते ?

शंकर०—मेरी बात छोड़िए ! मैं तो अपने भाई के बेटे को कुछ दिनों के लिए ग़ायब ही करा देता। श्रीमान् जी की आँखें खुल जातीं, होश ठिकाने आ जाते।

शाम०—मैं मर जाऊँ, जब भी यह न करूँ।

शंकर०—मुझे पहले ही मालूम था। क्योंकि इसके लिए साहस की ज़रूरत है, और साहस आपके पास है नहीं। आपके पास प्यार है, और प्यार आदमी की सबसे बड़ी निर्बलता है। क्या आपने दुनिया में किसी प्यार करने वाले आदमी को ऊँचा उठते, बलवान होते, शासन करते देखा है? (शामलाल शंकरदास की ओर देखता है, और चुप रहता है।) कम से कम मैंने तो प्यार को सदा रोते, गिड़गिड़ाते, शक्ति के हाथ बिकते और उसके पाँव की ठोकरें खाते देखा है। इसलिए अगर आप अपने मन में भाई का प्यार पालना चाहते हैं, तो संसार में ठोकरें खाने के लिए तैयार हो जाइए। और अगर आप सुख, आनन्द और सम्मान का जीवन बिताना चाहते हैं, तो आपको संसार का झूठा प्यार त्यागना होगा।

शाम०—(सोचकर) तुमने कहा है, अगर मेरी जगह तुम होते, तो रायबहादुर के बेटे को ग़ायब कर देते। मगर मैं चाहूँ, जब भी यह काम नहीं कर सकता।

शंकर०—आपको यह काम करने की ज़रूरत ही क्या है? आप आज्ञा दे दें, हो जायगा।

शाम०—मगर बच्चे को ज़रा भी हानि न पहुँचे।

शंकर०—मज़ाल है।

शाम०—और जब मैं चाहूँ, वह मुझे वापिस मिल जाए।

शंकर०—क्यों नहीं ?

शाम० और यह भेद किसी को मालूम न हो।

शंकर०—क्या यह भी सम्भव है ?

शाम०—तुम्हारी ज़रा सी बेपरवाई मेरी मौत बन जाएगी।

शंकर०—मैं स्वयं मर सकता हूँ, मगर मुझसे ऐसी बेपरवाई नहीं हो सकती।

शाम०—(संकोच से) तो······मेरी ओर से आज्ञा है। (जेब से नोट निकाल कर) एक हज़ार रुपया——शेष फिर——मगर सावधान ! यह बात कहीं बाहर न निकल जाए।

शंकर०—आप निश्चित रहें !

[दोनों का प्रस्थान]

———

तीसरा दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का दफ्तर

समय—साँझ

[रायबहादुर हीरालाल अपने दफ्तर में एक शानदार मेज़ के सामने बैठे हैं। सामने एक कुरसी पर उनका ऋणी दुर्गादास बैठा मिन्नत-समाजत कर रहा है।]

दुर्गादास—नहीं रायसाहब ! मैं बिलकुल बरबाद हो जाऊँगा।

हीरालाल—(बेपरवाई से) मगर इसमें मेरा क्या दोष है ?

दुर्गा० —दोष तो मेरा ही है सरकार ! मगर फिर भी . . .

हीरा०—(पेंसिल उठाकर) एक साल बीत गया, तुमने व्याज न दिया। दूसरा साल बीत गया, तुमने व्याज न दिया। तीसरा साल बीत गया, तुमने व्याज न दिया। अब तुम ही बताओ, मैं क्या करूँ ?

दुर्गा०—एक बार और अवसर दे दीजिए।

हीरा० —(घंटी बजाते हुए) बार बार परमात्मा भी अवसर नहीं देता। (दरबान के आने पर) ज़रा शामलाल को भेज दो।

[दरबान का प्रस्थान।]

दुर्गा०—बाप-दादों के समय का एक छोटा सा झोंपड़ा है, जब से पैदा हुआ, उसी में रहा, अब इस बुढ़ापे में कहाँ ठोकरें खाऊँगा ? छोटे छोटे बच्चे हैं, झोंपड़ा छिन गया, तो कहाँ रहेंगे।

हीरा०—यह सोचना मेरा काम नहीं है। (शामलाल का प्रवेश) देखो, इसकी तरफ़ कितना रुपया निकलता है ?

[शामलाल खिड़की के पास जाकर मेज़ से रजिस्टर उठाता है, और उसे देखता है।]

दुर्गा०—रायसाहब ! मैं ग़रीब हूँ, मगर बेईमान नहीं हूँ। मैं सच कहता हूँ, मैं आपका पैसा पैसा चुका दूँगा।

[शामलाल रजिस्टर लिए आता है]

शाम०—एक हज़ार सात सौ बारह रुपया ग्यारह आना।

हीरा०—(एक एक शब्द पर ज़ोर देते हुए) एक हज़ार सात सौ बारह रुपया ग्यारह आना। अगर नालिश न करूँ, तो यह रुपया मुझे कैसे मिल सकेगा ? बोलो।

दुर्गा०—मैं हर महीने की पहली तारीख़ को पचीस रुपये दे जाया करूँगा।

हीरा०—पचीस रुपये महीना ? गोया अगर आज से ब्याज बिलकुल बन्द हो जाए, तो भी कहीं छै साल में जाकर तुम रुपया चुका सकोगे (सिर हिलाकर) मुश्किल ! (शामलाल से) काग़ज़ वकील के पास भेज दो।

दुर्गा०—मेरी इज़्ज़त आपके हाथ है, रायसाहब ! आप मुझे बचा लें, भगवान आपके जान-माल की रक्षा करेगा !

हीरा०—आदमी को रुपया-पैसा देना भगवान का काम है। उसकी रक्षा करना आदमी का अपना काम है। और मेरा ख्याल है, मैं जानता हूँ, कि अपनी चीज़ों की कैसे रक्षा की जाती है।

[दुर्गादास निराश होकर उठता है, और चला जाता है। इतने में बाहर से आया के चिल्लाने की आवाज़ आती है। आया "दलीप" "दलीप" कह कर चिल्ला रही है। यह आवाज़ पहले दूर से सुनाई देती है। इसके बाद निकट आती जाती है। हीरालाल घबराकर खड़ा हो जाता है। बूढ़ी आया गिरती-पड़ती प्रवेश करती है, और द्वार के साथ लगकर खड़ी हो जाती है। हीरालाल घबराकर उसके पास पहुँचता है।]

हीरा०—क्या बात है ?

आया—दलीप नहीं मिलता !

हीरा०—(घबराकर) तू कहाँ थी ?

आया—(रुक रुककर) मैं बग़ीचे में थी······वह गेंद के साथ खेल रहा था।

हीरा०—(अधीरता से) अच्छा !

आया—उसने गेंद झाड़ियों में फेंक दिया। मैं लेने गई—

हीरा०—फिर !

आया—लेकर लौटी, तो दलीप का पता न था।

हीरा०—अपने कमरे में होगा-अपनी चाची के पास होगा-साथ की कोठी में होगा-दरबानों के पास होगा।

आया—(रोकर) कहीं भी नहीं है !

हीरा०—(और भी घबराकर ऊँची आवाज़ से) सरजू ! रामू ! बंसी ! मूला ! (सब नौकर आकर सामने खड़े हो जाते हैं।) जाओ ! जाकर दलीप को ढूँढ़ो। (एक नौकर से) तुम सब कोठियों में देखो। (दूसरे से) तुम छावनी की तरफ़ जाओ (तीसरे से) तुम शहर की तरफ़ ! (चौथे से) तुम स्टेशन की तरफ़ !

[सब नौकर चले जाते हैं।]

हीरा०—(शामलाल से) और तुम यहाँ खड़े मेरा मुँह क्या देख रहे हो ? जाओ, जाकर पुलीस को सूचना दो।

[हीरालाल जल्दी से चला जाता है। शामलाल अवाक् रह जाता है। वह कुछ देर वहीं खड़ा सोचता रहता है। इसके बाद मेज़ के पास जाकर उसके खाने बन्द करता है, और बाहर जाना चाहता है। इतने में लाजवन्ती आकर उसके सामने खड़ी हो जाती है। अब लाजवन्ती हाँप रही है। शामलाल काँप रहा है।]

शाम०—(साहस बटोरकर) तुमने भी सुन लिया !

लाज०—सुन लिया, और सुनकर ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसी ने मुझे आकाश से धरती पर पटक दिया है, जैसे किसी ने मेरे मुँह पर कालिख पोत दी है, जैसे किसी ने मेरे दिल का गर्व छीन लिया है। मैं समझती थी, मैंने आपको बचा लिया है! मगर नहीं, मालूम होता है, विष चढ़ चुका था।

शाम०—लाज! तुम क्या कह रही हो?

लाज०—मैं कह रही हूँ, कि दलीप के गुम होने में आपका हाथ है, और मैं कह रही हूँ, कि आपने, साथ न जाने वाले धन के लोभ में, साथ जाने वाला धर्म बेच दिया है।

शाम०—मेरी बात सुनो—

लाज०—(ऐसे जैसे कोई किसी को आज्ञा दे रहा हो) जाओ! जाकर दलीप को लौटाकर लाओ। नहीं तो तुम्हारा भाई उसके वियोग में रो-रोकर पागल हो जायगा, तुम्हारी स्त्री तुमसे घृणा करेगी?

शाम०—लाज! मैं सच कहता हूँ, इसमें मेरा हाथ नहीं है।

लाज०—अब आप झूठ क्यों बोलते हैं? आपका मुँह कह रहा है, कि यह सब आपने किया है।

शाम०—मैं कहता हूँ—

लाज०—मैं पूछती हूँ, क्या दलीप जीता है? क्या वह हमारे पास लौट आएगा? क्या हमारे घर की शोभा, हमारे मन की शान्ति,

हमारी निश्चिन्तता की नींद हमें फिर से मिल जाएगी ? बोलो स्वामी ! क्या तुम जो मुझ से बहुत दूर चले गए मालूम होते हो, फिर मेरे निकट आ जाओगे ?

शाम०—लाज ! यह केवल तुम्हारा भ्रम है ! मैं मनुष्य हूँ पशु नहीं हूँ ।

लाज०—इस समय तुम पशु भी नहीं हो ।

शाम०—(क्रोध से) मैं कहता हूँ, क्या तुम जानती हो, तुम क्या कह रही हो ?

लाज०—(सुना अनसुना करके) स्वामी ! अगर तुम्हें अपने देवतुल्य भाई का ख्याल नहीं है, तो मेरा ही ख्याल करो—मैं भी दलीप को अपने बच्चे के समान चाहती हूँ ।

(भूमि पर गिर जाती है ।)

शाम०—(प्रभावित होकर) उठो लाज ! मेरा ख्याल है, अभी तीर कमान से न निकला होगा । (तेजी से प्रस्थान)

× × × ×

दृश्य परिवर्तन ।

स्थान—जंगल

समय—रात

[शंकरदास मोटर में दलीप को लिए जा रहा है । मोटर एक-दो सड़कों पर जाती दिखाई देती है, इसके बाद आँखों से ओझल हो जाती है ।]

चौथा दृश्य

स्थान—काशी का घाट

समय—साँझ से कुछ देर पहले

[काशी के घाट पर सूरदास इकतारे के साथ गा रहा है। यात्री आते हैं, सुनते हैं, चले जाते हैं। शंकरदास दलीप को उठाए आता है, और सूरदास के सामने से गुज़र कर दूसरी तरफ निकल जाता है। सूरदास अपने गाने में निमग्न है।]

गीत

बाबा ! मनकी आँखें खोल !

दुनिया क्या है एक तमाशा !

चार दिनों की झूठी आशा !

पल में तोला, पल में माशा !

ज्ञान-तराज़ू लेकर पागल, तोल सके तो तोल। बाबा···

झूठे हैं ये दुनिया वाले,

तन के उजले, मन के काले,

इनसे अपना आप बचा ले,

रीति कहाँ की ? प्रीति कहाँ की ? कैसा प्रेम किलोल। बाबा···

एक यात्री—काशी में इसके जोड़ का गाने वाला दूसरा नहीं है।

दूसरा—गाता क्या है ? गंगा के तीर पर दूसरी गंगा बहाता है।

तीसरा—न भैया ! यह गीत नहीं गाता, अज्ञान के अंधकार में सोई हुई आत्माओं को जगाकर प्रेम, प्रकाश और पवित्रता के शिखर पर खड़ा कर देता है।

चौथा—इसके गीत सुनकर तो ऐसा मालूम होता है, जैसे हम कमल के फूलों, चाँद की किरणों, और स्वर्ग के सुपनों के देश में पहुँच गए हैं।

पहला—भई ! ज़रा सुनो ना। बातें फिर कर लेना।

[सूरदास गाता है, बाटली वाला और जयकृष्ण आकर सुनते हैं।]

मतलब की सब दुनियादारी,
मतलब के सारे संसारी,
तेरा जग में को हितकारी ?
तन मन का सब ज़ोर लगाकर नाम हरि का बोल। बाबा···

बाटली वाला—(धीरे से) क्या राय है ?

जयकृष्ण—आप ठीक कहते थे। यह आदमी गाता क्या है, समाँ बाँध देता है !

बाटली०—अगर यह सूरदास हमारी कम्पनी में आ जाए,

तो कैसा रहे ? ज़रा सोचो।

जयकृष्ण—(संदेह पूर्ण स्वर से) मगर मान जाएगा ?

बाटली०—(आगे बढ़ते हुए) रुपये में बड़ी शक्ति है। (सूरदास के कंधे पर हाथ रख देता है, सूरदास चौंकता है) भाई ! खूब गाते हो। क्या बात है ? जो सुनता है, झूमने लगता है।

सूरदास—(इकतारा भूमि पर रखकर) आप कौन हैं ?

बाटली०—मैं कालीदास नाटक कम्पनी का मालिक हूँ।

जयकृष्ण--तुमने इनका नाम तो सुना होगा। बहुत बड़े आदमी हैं।

सूरदास--ज़रूर होंगे भाई। मगर मैं अन्धा हूँ, मुझे ऐसे महा-पुरसों से मिलने का औसर कब मिलता है ?

बाटली०—सूरदास ! परमात्मा ने तुम्हें इतना सुरीला गला, ताल सुर का इतना अच्छा ज्ञान दिया है, तो फिर भिक्षा क्यों माँगते हो ? अगर मेरी कम्पनी में आ जाओ, तो चार दिनों में कहीं से कहीं जा पहुँचो।

जयकृष्ण—प्रारब्ध जाग उठे सूरदास !

सूरदास—मगर भाई ! मैं अंधा हूँ, और गरीब हूँ, और दुनिया में अकेला हूँ। मेरी दो आने में गुजर हो जाती है। मैं नौकरी-चाकरी करके क्या करूँगा ?

बाटली०—सूरदास ! ज़रा सोच लो। यहाँ भीख माँगते हो,

वहाँ अपनी कमाई खाओगे ! (जयकृष्ण की ओर देखता है ।)

जय०—(बाटली वाला का अभिप्राय समझकर) कितना अंतर है ?

सूरदास—मगर मैं तो भिक्खा नहीं माँगता मेरे भाई !

बाटली०—तुम भिक्खा नहीं माँगते, तुम्हारे गीत भिक्खा माँगते हैं। यह और भी बुरी बात है।

सूरदास—तो चाकरी करके क्या हो जाएगा ? अब यहाँ—घाट पर बैठकर माँगता हूँ, फिर आपके नाटक में खड़ा होकर माँगूँगा।

बाटली०—नहीं सूरदास ! वहाँ जो तुम्हारा गीत सुनना चाहेगा, उसे टिकट खरीदना होगा।

जय०—टिकट खरीदने में और भिक्षा देने में आकाश-पाताल का अन्तर है सूरदास !

सूरदास—और जिसके पास टिकट खरीदने को दाम न हों ?

बाटली०—वह अपने घर बैठे, उसे तुम्हारा गीत सुनने का क्या अधिकार है ? दुनिया में हर वस्तु का मूल्य है।

सूरदास—मगर महाराज ! सूरज की धूप और चाँद की चाँदनी और बादल की बरषा की क्या कीमत है ? बाग़ में फूलों की डालियों पर बैठकर जो पखेरू मन को मोह लेने वाले गीत गाते रहते हैं, उनकी क्या कीमत है ?

बाटली०—तुम तो बहुत दूर चले गए ! मेरा मतलब यह था, कि तुम रागी हो, रागी बनो। तुम्हें भक्त बनकर क्या मिलेगा ?

सूरदास—(मुस्कराकर) रागी बनकर रुपया मिलेगा, भक्त बनकर भगवान मिलेगा।

बाटली०—(निराश होकर) तो तुम नौकरी नहीं करना चाहते ?

सूरदास—भैया ! जिसको ईसर घर बैठे भेज दे, उसे इस असार संसार के मोह-माया में फँसने की क्या दरकार है ?

जय०—यह तुम्हारी मूर्खता है।

बाटली०—(जाते जाते) यह आँखों का भी अंधा है, दिल का भी अंधा है।

सूरदास—जगत में हर आदमी जात्री है, जिसके पीछे लोभ-तृसना का चोर लगा हुआ है। स्याना वही है, जो इस चोर से बचे।

[दोनों चले जाते हैं। सूरदास मुस्कराकर अपना इकतारा सँभालता है और फिर गाने लगता है।]

गीत

तेरी गठरी में लागा चोर मुसाफ़िर जाग ज़रा, जाग ज़रा।
आज ज़रा सा फ़ितना है यह,
तू कहता है कितना है यह,
दो दिन में यह बढ़कर होगा मुँह-फट और मुँह ज़ोर।
मुसाफ़िर जाग ज़रा, जाग ज़रा।
नींद में माल गँवा बैठेगा,
अपना आप लुटा बैठेगा,

फिर पीछे कछु नाहीं बनेगा, लाख मचावे शोर ।

मुसाफ़िर जाग ज़रा, जाग ज़रा ।

[कई साधु आकर सूरदास के पास बैठ जाते हैं । एक साधु सूरदास के हाथ में नारियल दे देता है । सूरदास इकतारा रख देता है, और नारियल पीने लगता है ।]

एक साधु—सूरदास जी ! हमें तो आज कुछ भी न मिला ।

दूसरा—अरे महाराज ! मिले कैसे ? लोगों में दया-धर्म का सौक ही नहीं रहा ।

तीसरा—पहले इसी काशीपुरी में मैं हर रोज साँझ के बखत दस दस रुपये लेकर उठता था, अब दस पैसे भी नहीं मिलते ।

चौथा—यही तो कलजुग के लच्छन हैं । गृहस्थी ऐस करते हैं साधु-महात्मा भूखे मरते है । क्यों सूरदास ?

सूरदास—(चिलम दूसरे को देकर) अरे भाई ! गृहस्थी फिकर में पैदा होते हैं, फिकर में मर जाते हैं । तुम्हें क्या फिकर है ? उस आसरम में जाकर चार दिन न रह सको । यह जिन्दगी बड़ी अच्छी !

पहला—नहीं महाराज ! यह जिन्दगी नहीं, जिन्दगी का मजाक है ।

सूरदास—(क्रोध से) तो जाओ, जाकर किसी से सादी कर लो । जब तुम्हारे मन की तृसना नहीं मिटी, तो गेरुए बस्तर पहनना किस

काम का ?

पहला—सूरदास ! तुम तो गुस्सा हो गए। परन्तु बताओ, जब दो जून खाने को भी न मिले, तो क्या करें ?

सूरदास—परमेसर से माँगो। परमेसर देगा।

दूसरा—तुम भी लोगों के सामने गाते हो, परमेसर के सामने क्यों नहीं गाते ? खाने को मिल जाता है, तो चले हैं उपदेस सुनाने। भूखे मरो तो होस ठिकाने आ जाएं।

सूरदास—भाई ! हम तो परमेसर ही के सामने गाते हैं, सुनने को जो कोई सुन जाए। अपने राम को क्या ? लो यह पैसे आपस में बाँट लो। (साधु पैसे बाँटते हैं।)

तीसरा—सूरदास ! तुमने कुछ कल के लिए भी रखा या नहीं ?

सूरदास—भाई ! जिस मालिक ने आज दिया है, वह कल भी देगा, साधू के लिए कल की फिकर करना बुरा !

[एक साधनी का भागते भागते प्रवेश]

साधनी—सूरदास !

सूरदास—आओ माई बैठो !

साधनी—नहीं सूरदास ! बैठने की बेला नहीं। आज वहाँ एक पेड़ तले किसी का बालक रह गया है। बहुतेरी खोज की है, माँ-बाप का कुछ पता ही नहीं लगता। बताओ, क्या करें ?

सूरदास—(अंधी आँखें झपककर) रो रहा होगा !

साधनी—रोता तो ऐसे है, कि तुमसे क्या कहूँ ? किसी से चुप नहीं होता।

सूरदास—मेरे पास आ जाए, तो एक छिन में चुप हो जाए। क्या मजाल, जो जरा भी रोए।

[एक साधु दलीप को लिए हुए आता है। दलीप ज़ोर ज़ोर से रो रहा है।]

साधु—तो तुम ही जतन कर देखो, हम में तो यह बूता नहीं।

सूरदास—लाओ भैया !

[सूरदास दलीप को लेकर कंधे से लगा लेता है, और उसके सिर के बालों में प्यार से अंगुलियाँ फेरने लगता है। दलीप पहले रोता है, फिर चुप हो जाता है, और अपना सिर सूरदास के कंधे पर रख देता है।

अब बोलो, चुप हुआ या नहीं। कहते थे, किसी की सुनता ही नहीं। अरे बाबा ! प्यार की पुकार तो पसु-पक्खी भी सुनते हैं, यह तो फिर भी आदमी का बच्चा है। लो अब जाकर इसके माँ-बाप को खोज लाओ।

साधनी—सूरदास ! बहुत ढूँडा है, कहीं पता नहीं लगता। देखो तुम एक काम करो। इसे अपने घर ले जाओ। जब इसके माँ-बाप आएँगे, हम तुम्हारे पास भेज देंगे।

सूरदास—मगर........।

दूसरा—नहीं सूरदास ! यह तो तुम्हें करना ही होगा ।

सूरदास—(विवशता से) अच्छा भैया ! जैसी तुम्हारी मरजी ।

[सूरदास दलीप को लेकर चला जाता है। इतने में पुलीस के आदमी ज़ख्मी शंकरदास को उठाए लाते हैं, और शहर की तरफ़ चले जाते हैं। दो चार आदमी पीछे रह जाते हैं।]

एक—(दूसरे आदमी से) क्यों भाई ! कुछ बता सकते हो, यह क्या हुआ है ?

दूसरा—एक मोटर एक पेड़ से टकरा गई है, और क्या हुआ है ?

तीसरा—यह आदमी मर गया है या अभी जीता है ?

दूसरा—(सिर हिलाकर) ना भाई ! मर गया। और अगर नहीं मरा, तो हस्पताल में जाकर मर जाएगा ।

चौथा—कोई परदेसी मालूम होता है ।

दूसरा—और यह भी मालूम होता है कि कोई अमीर है। जेब से एक हज़ार के नोट ही निकले हैं ।

पहला—गाड़ी तो चूर चूर हो गई होगी ?

दूसरा—एकदम !

तीसरा—जाने इसकी आँखें कहाँ थीं ?

पहला—भाई मेरे ! जब बुरे दिन आते हैं, तो आँखें पहले बन्द हो जाती हैं ।

[सबका प्रस्थान]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—काशी के बाहर ग़रीबों के झोंपड़े

समय—रात

[एक जगह म्युनिसिपल कमेटी के लैम्प के नीचे कुछ ग़रीब लोग बैठे ताश खेल रहे हैं। दूसरी जगह एक आदमी बैठा हुक्का पी रहा है। कुछ परे एक बकरी बँधी है। एक स्त्री पानी का घड़ा लिए जा रही है। इतने में सूरदास दलीप को उठाए आता है, और बाहर से पुकारता है।]

सूरदास—(ऊँची आवाज़ से) **कल्लो की माँ! ओ कल्लो की माँ!!**

[कोई जवाब नहीं देता।]

कल्लो की माँ—(अपने झोंपड़े से जवाब देती है) **क्या है सूरदास? तुम्हारा खाना बना रखा है, खालो! मुझे इस बखत क्या कहते हो?**

सूरदास—खाने की बात नहीं, कल्लो की माँ! जरा बाहर आओ!

(कल्लो की माँ झोंपड़े से बाहर निकलती है)

कल्लो की माँ—अब तुम बहुत तंग करने लगे सूरदास! कहो क्या कहते हो? (बच्चे को देखकर) **अरे! यह बच्चा किसका**

उठा लाए ?

सूरदास—उठा नहीं लाया कल्लो की माँ! गंगा के घाट पर पड़ा था। पता नहीं इसके माँ-बाप कहाँ चले गए? मैंने सोचा, चलो घर ले चलें। रात की बेला घाट पर ठण्डी होती है, साँड होते हैं, सियार होते हैं।

कल्लो की माँ—मगर तुम क्यों उठा लाए? जाने कौन है?

सूरदास—कोई भी हो, परमेसर का जीव तो है। और फिर एक ही रात की बात है, देखना, कल भोर होते ही इसके माँ-बाप आ जाएंगे। ऐसे ज़रा से बच्चे को खोकर क्या किसी को नींद आ सकती है? तड़फ रहे होंगे!

कल्लो०—अच्छा बाबा! जो तुम्हारी खुसी! (दलीप को देखकर) मगर बच्चा है बड़ा सुन्दर! कैसी मोटी मोटी आँखें हैं। गोरा गोरा रंग है!! मुटर मुटर तकता है!!!

(बच्चे को लेना चाहती है, मगर सूरदास नहीं देता।)

सूरदास—कल्लो की माँ! यह हमारा एक रात का पाहुना है। अपने घर में, राम जाने, इसकी खिदमत करने वाले कितने चाकर होंगे? राम जाने, वहाँ इसकी कितनी खुसामदें होती होंगी? जाकर इसके लिए थोड़ा सा दूध ले आओ। यह भी क्या याद करेगा, कि किसी अन्धे फकीर के घर गया था। जाओ, ले आओ।

[सूरदास जेब से पैसे निकालता है।]

कल्लो०—पर इस बखत दूध मिलेगा भी? मुझे तो सक है।

सूरदास—जरूर मिलेगा कल्लो की माँ (पैसे देकर)! तुम जाओ

तो सही (दलीप अपना कवच उतार कर फेंक देता है।) **यह क्या ? कल्लो की माँ ! इसने क्या फेंका है ? ज़रा देखना !**

कल्लो०—(कवच उठाकर) **कवच है सूरदास, और सोने का है।** (सूरदास को देकर) **सँभाल कर रखो, यह बच्चा फिर फेंक देगा।**

[सूरदास कवच ले लेता है। कल्लो की माँ चली जाती है। सूरदास दलीप के सिर पर हाथ फेरता है और उसे लेकर अपनी झोंपड़ी में चले जाता है।]

छठा दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का घर

समय—रात

[रायबहादुर हीरालाल बीमार पड़ा है। सामने डाक्टर साहब बैठे हैं। एक तरफ़ शामलाल है। ज़रा परे हटकर लाजवन्ती घूँघट काढ़े खड़ी है।]

रायबहादुर—(पीड़ा की व्याकुलता से) **शामलाल !**

डाक्टर—घबराइए नहीं (शामलाल से) **वह छोटी शीशी !**

[शामलाल शीशी दे देता है, डाक्टर दवा निकालता है।]

रायबहादुर—डाक्टर साहब ! मेरे रोग की औषधि मेरा दलीप है, उसे ला दीजिए। नहीं तो (सिर हिलाकर) **मेरा बुरा हाल होगा। शामलाल !**

शाम०—(पास जाकर) **भैया ! धीरज धरो। पोलीस खोज कर रही है।**

राय०—सभी समाचारपत्रों में विज्ञापन दे दो, कि जो मेरे दलीप का समाचार लाएगा, उसे बीस हज़ार रुपया इनाम दिया जाएगा।

शाम०—भैया ! मैंने विज्ञापन कल ही भेज दिया है।

[डाक्टर दवा पिलाना चाहता है। रायबहादुर उसे परे हटा देता है।]

राय०—क्या यह दवा पीने से मेरा दलीप मेरे सामने आकर खड़ा हो जाएगा ? अगर नहीं, तो . . . . . ., डाक्टर साहब ! यह मन का रोग है, देह का नहीं।

[हीरालाल लेट जाता है।]

लाज०—(शामलाल को एक तरफ़ ले जाकर) **शंकरदास का कुछ पता लगा या नहीं ?**

शाम०—नहीं।

लाज०—यह भी पता नहीं लगा कि वह कहाँ गया है ?

शाम०—कुछ पता नहीं लगा।

लाज०—इनकी दशा तो बहुत ख़राब है। क्या करें ?

राय०—(आह भरकर) **भगवान ! मैंने किसी का क्या बिगाड़ा था !**

[पर्दा गिरता है।]

सातवाँ दृश्य

स्थान—काशी की एक सड़क

समय—दुपहर

[कुछ साधु बातें कर रहे हैं।]

एक साधु—कितना बदला ?

दूसरा०—एकदम कायापलट !

पहला०—पहले जो कुछ पाता था, बाँट देता था। अब किसी को पैसा भी नहीं देता।

तीसरा०—उलटा माँगता है। कहता है, मेरा खर्चा बढ़ गया है। कोई पूछे, जरा से बच्चे का खर्चा ही क्या ? दो पैसे का भात बहुत है।

चौथा०—मगर वह उसे भात खिलाए भी ? उस दिन मैं गया था, देखा, तो बैठा दही और जलेबी खिला रहा था। मैंने समझाया तो कहने लगा, अब इसको क्या भूखों मार दूँ ?

पहला०—इस बच्चे का सुभाओ बिगड़ गया, तो सूरा बाद में रोएगा।

दूसरा०—और अपना बच्चा भी तो हो !

तीसरा०—वह तो कहता है, अब यह मेरा ही बच्चा है। उसे 'दीपक', 'दीपक' कहकर बुलाता है। हर बखत गले से लगाए रखता है।

चौथा०—(हँसकर) तो नामकरण संस्कार भी हो गया। वाह!

पहला०—(सूरदास को आते देखकर) देखो, वही आ रहा है। पूछूँ, वह सरधा-भक्ति कहाँ चली गई ?

दूसरा०—अजी! अपने राम को क्या ? मोहमाया में फँसता है, फँसने दो।

[सूरदास का दलीप को उठाए हुए प्रवेश]

तीसरा०—क्यों सूरे! क्या हाल है ?

सूरदास—भाई हाल क्या होगा ? दुनिया को छोड़ बैठा था, परमेसर ने फिर माया में फँसा दिया। इसके माँ-बाप आ जाते तो मेरा गला छुट जाता!

पहला०—यह सब कहने की बातें हैं सूरे! तुम आप माया में फँस रहे हो। चाहो, तो आज बंधन तोड़ दो।

सूरदास—यही तो असम्भौ है महाराज! आखिर इस अज्ञान असहाय बालक को कहाँ पटकूँ ? बताओ!

दूसरा०—मैं बताऊँ सूरे! इसे किसी अनाथ-आसरम में दाख़ल करा दे, और आप परमेसर का भजन कर। (सूरदास निरुत्तर हो जाता है।) अब बोलता क्यों नहीं ? इसका जवाब दे।

सूरदास—अनाथ-आसरम में इसका इतना ख्याल कौन रखेगा ?

तीसरा०—(दूसरे से) सुन लिया महाराज! अब यह सूरदास

वह सूरदास नहीं है। सरीर वही है, आत्मा बदल गया है।

सूरदास—यह बात सच! पहले मैं समझता था, घाट पर बैठकर दो पद गा लेने से ही परमेसर खुस हो जाता है। अब मालूम हुआ, कि उसकी असली भक्ति यह है कि हम उसके जीवों की सेवा करें। पहले मैं केवल अपना आप पालता था, अब किसी दूसरे की भी पालना करता हूँ। और मेरा आत्माराम यह कहता है, कि सेवा-मार्ग, भक्ति-मार्ग से भी ऊँचा है।

चौथा०—यह तुम्हारी सम्मति होगी, अपने राम की तो यह सम्मति नहीं, कि किसी के लल्ला को जलेबियां खिलाना परमेसर के भजन से भी अच्छा है।

सूरदास—(मुस्कराकर) अपना अपना ख्याल है भाई!

पहला०—अरे यार छोड़ो इन बातों में क्या धरा है? सूरे! इस लू में कहाँ जा रहे हो?

सूरदास—हलवाई से थोड़ा हलुआ माँगने जा रहा हूँ।

दूसरा०—तुम तो कहते थे, हम किसी के सामने हाथ नहीं फैलाते!

सूरदास—(दलीप के सिर पर हाथ फेर कर) बाबा! मैं अपने लिए नहीं माँगता, इस बच्चे के लिए माँगता हूँ। यह रोता है, तो मेरे मन में कुछ होने लगता है।

तीसरा०—अभी—आगे आगे देखना होता है क्या?

सूरदास—अच्छा भाई! भगवान् जो दिखाएगा, देख लूँगा।

[एक तरफ़ सूरदास चला जाता है, दूसरी तरफ़ साधु]

आठवाँ दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का घर

समय—प्रातःकाल

[रायबहादुर हीरालाल अपने पुत्र के बड़े तैल-चित्र के सामने बैठा उसकी तरफ़ सजल आँखों से देख रहा है। कुछ दूर शामलाल उदास खड़ा है। दोनों की डाढ़ियों के बाल बढ़ गए हैं। मकान की शोभा भी फीकी मालूम होती है।]

हीरालाल--(ठंडी आह भरकर) पूरा एक साल बीत गया, और दीपक का कोई पता नहीं मिला।

शामलाल—मगर मुझे अब भी आशा है, कि वह मिल जाएगा।

हीरा०--(हवा में देखते हुए) यह सब मेरा ही दोष है। मैं अंधा हो गया था। मैं समझता था, संसार में रुपया-पैसा ही सब कुछ है। अब मालूम हुआ, रुपया-पैसा कुछ नहीं है। मैंने उस दिन कहा था, कि मैं अपनी चीज़ों की रक्षा करना जानता हूँ। उसी दिन मेरे चौकीदार मेरे दरवाज़ों पर खड़े पहरा देते रह गए, और मेरा बेटा गुम हो गया। मानों भगवान् ने मेरे मुँह पर थप्पड़ मार-कर कहा--बेवकूफ देख! तू कुछ नहीं कर सकता, जो कुछ करता हूँ, मैं करता हूँ।

शाम०--(निकट आकर) मगर अब इस तरह ठंडी आहें भरने से क्या होगा?

हीरा०--(सुना अनसुना करके) मेरा भी यही ख्याल है, कि वह कहीं न कहीं जीता है। भगवान् ने देखा, कि यह आदमी धन का लोभी है; इसे जीव की परवा नहीं। उसने मेरा बच्चा मुझ से छीन लिया, और किसी ऐसे प्राणी के हवाले कर दिया, जो शायद धन की परवा नहीं करता, आदमी की परवा करता है। शामलाल!

शाम०--(सिर झुकाकर) इसमें मेरा भी दोष है!

हीरा०--(आश्चर्य से) तुम्हारा दोष?

शाम०--मैंने भी धन का ख्याल किया, बच्चे का ख्याल न किया। अगर मैं ही बच्चे का ख्याल करता, तो हमें यह काला दिन देखना नसीब न होता।

हीरा०--तुम सच कहते हो, तुम्हें भी रुपये का रोग लग गया था। (शामलाल का रंग उड़ जाता है, जैसे उसका रहस्य खुल जाने वाला है) तुमको भी हर समय यही धुन लगी रहती थी, कि हम अधिक से अधिक रुपया कमा लें। इसके लिए न मैंने पाप-पुण्य का ख्याल किया, न तुमने। परिणाम यह है, कि हमने धन कमा लिया, मगर मनकी प्रसन्नता गँवा बैठे। अब मैं भी रो रहा हूँ, तुम भी रो रहे हो।

शाम०--भैया........।

हीरा०--(चाबियाँ देते हुए) अलमारी से मेरा दान-पत्र निकालो, मैं उसे बदलना चाहता हूँ।

[शामलाल चाबियाँ लेकर चला जाता है, हीरालाल इधर-उधर टहलता है ।]

हीरा०--(ऊँची आवाज़ से) दूसरे खाने में बाईं तरफ़ रखा है ।

[हीरालाल फिर टहलता है, इतने में शामलाल आवेग, आश्चर्य और आनन्द से वसीयत नामा पढ़ते पढ़ते प्रवेश करता है ।]

शाम०--यह क्या ? चौथा भाग मेरे नाम !

हीरा०--तुमने मेरी बड़ी सेवा की है, इस लिए मैंने वसीयत कर दी थी, कि मेरे बाद मेरी जायदाद के तीन भाग मेरे बेटे को मिलें, चौथा भाग तुम्हें मिले । मगर अब मैं इसे बदलना चाहता हूँ मैंने तुम्हारा जो रूप अब देखा है, वह इससे पहले न देखा था ।

शाम०--(डरकर) मगर भैया...........।

हीरा०--(बात काटकर) मैं पहले समझता था, तुम मेरे भाई हो, मगर इस घटना ने सिद्ध कर दिया है, कि तुम मेरे भाई नहीं हो। [शामलाल गिरने से बचने के लिए कुरसी थाम लेता है । हीरालाल अपना वक्तव्य जारी रखता है] क्या कोई अपने भाई के साथ ऐसा बर्ताव कर सकता है, जैसा तुमने मेरे साथ किया है ?

शाम०--भैया ! इसका क्या प्रमाण है कि......

हीरा०--प्रमाण माँगते हो ? ज़रा अपने मुँह का उड़ा हुआ रंग देखो । अपनी शोभा-हीन मरी हुई आँखें देखो । अपने काँपते हुए हाथ-पाँव देखो । और इतना ही नहीं, अपने गले में अटकते

हुए, ज़बान पर फिसलते हुए, होठों पर जमते हुए शब्द देखो और फिर बताओ, क्या यह यथेष्ट प्रमाण नहीं है ?

[शामलाल कोई उत्तर नहीं देता । वह उसी तरह अवाक् खड़ा रहता है ।]

हीरा०—यह सारी बातें साफ़ कह रही हैं, कि दलीप के गुम होने का जितना मुझे दुख हुआ है, उससे अधिक तुम्हें हुआ है। कोई भाई अपने भाई के दुख को इस तरह अनुभव कर सकता है, यह मेरी धारणा से बाहर था ! इसलिए मैं पहले तुम्हें भाई समझता था, अब भाई नहीं समझता—भाई का शब्द तुम्हारे लिए बहुत छोटा बहुत हलका और बहुत असुन्दर है ।

शाम०—(रोते हुए) नहीं, आपने मुझे अभी तक नहीं पहचाना।

हीरा०—अब मैं अपनी वसीयत बदलना चाहता हूँ। तुम्हें तीसरा भाग मिलेगा, बाक़ी दलीप को मिलेगा। और अगर दलीप न मिला, तो उसका भाग ग़रीबों को बाँट दिया जाएगा।

शाम०—मेरा मन अब भी यही कहता है, कि हमारा दलीप हमें मिल जाएगा।

हीरा०—अच्छा ! तुम मेरे लिए प्रार्थना करो। मैं पापी हूँ, भगवान् मेरी नहीं सुनता। तुम शुद्धात्मा हो, शायद वह तुम्हारी सुन ले।

[हीरालाल बाहर चला जाता है ।]

शाम०—भगवान् ! यह तुम मुझे कैसा भयंकर दंड दे रहे हो ?

[बाहर से किसी के गाने की आवाज़ आती है। शामलाल कान लगाकर सुनता है।]

गीत

क्यों रोता है मन, सोच तनिक,
मन सोच तनिक, क्यों रोता है ?
जो किसमत में है मिलता है,
जो होना है सो होता है ?

जिसने अंधेर किया जग में,
उसको जग में, संतोष कहाँ ?
क्यों अमृत की आशा उसको
जो विष की खेती बोता है।

क्यों रोता है मन, सोच तनिक--

[शामलाल गाना सुनते सुनते चला जाता है। पर्दा उठता है, दुर्गादास फ़क़ीरों के वेष में गाते हुए और हीरालाल सुनते हुए दिखाई देता है। शामलाल भी आकर खड़ा हो जाता है।]

गीत

तूने दुखियों के दिल तोड़े,
कोइ तेरा भी दिल तोड़ेगा।
यह पाप-पुन्य का सौदा है,
यह दुनिया का समझौता है।

क्यों रोता है मन सोच तनिक—

हीरा०—शामलाल यह आदमी सच कहता है, इसे कुछ देदो।

दुर्गा०—जब देने का समय था, उस समय तुमने कुछ नहीं दिया, अब क्या दोगे? अब वह समय बीत गया।

शाम०—तुम कौन हो? मालूम होता है, मैंने तुम्हें कहीं देखा है! मालूम होता है, मैंने तुम्हारी आवाज़ कहीं सुनी है।

हीरा०—क्या तुम कहीं—

दुर्गा०—(हँसकर) मैं दुर्गादास हूँ।

शाम०—(चौंककर) दुर्गादास?

दुर्गा०—हाँ वही अभागा! मैं तुम्हारे सामने गिड़गिड़ाया, तुमने परवा न की। मैंने तुमसे दया की भीख माँगी, तुमने मेरी पुकार न सुनी। मेरे पास एक झोंपड़ा था, वह भी तुमने छीन लिया और मुझे, और मेरी स्त्री और मेरे बच्चों को बाहर निकाल दिया। स्त्री बीमार थी, वह सरदी की मार न सह सकी, और मर गई। बच्चे छोटे थे, मैं उनको पाल न सका। अब मैं दुनिया में अकेला हूँ। अब मुझे किसी की दया नहीं चाहिए।

हीरा०—दुर्गादास! मुझे अफ़सोस है।

दुर्गा०—मगर अब तुम्हारा यह अफ़सोस भी मेरे किसी काम का नहीं है। तुम्हारा अफ़सोस मेरी स्त्री को ज़िन्दा नहीं कर सकता, मेरे बच्चों को नवजीवन नहीं दे सकता।

हीरा०—शामलाल इसका घर इसे लौटा दो।

दुर्गा०—अब मेरे पास केवल दो वस्तुएँ हैं; एक मेरी देह, दूसरी मृत अभिलाषाएँ। इन दोनों को लकड़ी और लोहे के घर की आवश्यकता नहीं। मेरी देह खुले आकाश तले रह सकती है, मेरी अभिलाषाएँ मेरे टूटे हुए दिल में रह सकती हैं। इसलिए अब शोक के समान आपकी दया भी मेरे किसी काम नहीं आ सकती।

हीरा०—दुर्गादास! मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने तुम्हें नष्ट करके अपना आप भी नष्ट कर लिया है। मैंने तुम्हारे बच्चों को घर से निकाला था, भगवान् ने मेरा बच्चा मेरे घर से निकाल दिया। मुझसे घृणा न करो। आज तुम्हारे समान मैं भी आशाओं के स्वर्ग का ठुकराया हुआ एक अभागा हूँ। (फूट फूट कर रोता है)।

शाम०—हमारे लाखों रुपये बैंकों में पड़े हैं, और पता नहीं हमारे बच्चे को रोटी का एक टुकड़ा भी मिलता है, या नहीं।

हीरा०—क्या हमारी यह दीन-दशा देखकर भी तुम्हें हम पर दया नहीं आती?

दुर्गा०—मैं यहाँ तुम्हें देखकर खुश होने के लिए आया था। मगर यह मेरी भूल थी, कोई पिता दूसरे पिता को दुःखी देखकर सुखी नहीं हो सकता।

हीरा०—मुझे यह आशीर्वाद न दो, कि भगवान् मेरा बच्चा मुझसे मिला दे। मैं इसके योग्य नहीं हूँ। मगर यह तो कह दो, कि वह जीता रहे; और जहाँ रहे, सुखी रहे।

दुर्गा०—भगवान्! इनके बच्चे की रक्षा कर!

शाम०—दुर्गादास! भगवान् तुम्हारे मन को भी शान्ति देगा।

हीरा०—शामलाल! यह ग़रीब है, इसीलिए इसका हृदय इतना विशाल और सुकोमल है। अगर यह अमीर होता, तो इसके मुख से उदारता और क्षमा के ये शब्द कभी न निकलते। दुर्गादास! (पाँव पकड़कर) भाई आओ! एक बार घर के अन्दर चलो। जहाँ से तुम्हें अपमानित करके निकाला था, एक बार वहीं बैठकर तुम्हारी पूजा कर लूँ।

[सब का प्रस्थान]

नवाँ दृश्य

स्थान—कालीदास नाटक कम्पनी का अभ्यास-घर

समय—दुपहर

[जयकृष्ण बाजे वालों को समझा रहा है, पास ही एक अभिनेता खड़ा है। परे बाटलीवाला सोफ़े पर बैठा निरीक्षण कर रहा है।]

जयकृष्ण—तुम तैयार हो ?

अभिनेता—जी हाँ !

जय०—(बाजे वालों को इशारा करके) एक—दो—

[बाजा और तबला शुरू हो जाता है। अभिनेता गाने लगता है।]

गीत

छाँड मन ! हरि बिमुखन को संग।
जिनके संग कुबुधि उपजति है, परत भजन में भंग।

[अभिनेता इतना बेसुरा गाता है कि जयकृष्ण उसके मुँह पर हाथ रखकर उसे गाने से रोक देता है। बाजा तबला सब बन्द हो जाता है।]

बाटलीवाला--(सोफ़े से उठकर) यह गाना है ?

जयकृष्ण—जितनी मेहनत इस आदमी पर की गई है, उतनी मेहनत अगर किसी गधे पर की जाती, तो वह भी इससे अच्छा गाने लगता।

बाटली०—मेरे ख्याल में जिस समय परमात्मा राग-विद्या बाँट रहा था, उस समय यह महात्मा भंग पीकर किसी अस्तबल में पड़े सो रहे थे। चले हैं रागी बनने!

अभि०—हज़ूर!

बाटली०—(नक़ल करते हुए) हज़ूर!

अभि०—(और भी मिन्नत करके) हज़ूर!

बाटली०—चलो दफ़ा हो यहाँ से—निकलो, दूर हो। मैं तुम्हारा मुँह तक नहीं देखना चाहता। (बाजे वालों से) इस समय आप भी कृपा कीजिए!

जय०—(धीरे से) इस समय भाग जाओ। सेठ साहब क्रोध में है।

[बाजे वाले उठकर चले जाते हैं। जयकृष्ण बाटलीवाला के पास जाकर खड़ा हो जाता है।]

जय०—यह तो बिलकुल गया गुज़रा निकला।

बाटली०—(क्रोध से) तुम तो गधे को घोड़ा बनाना चाहते थे। क्या कभी बना है?

जय०—(ठंडी आह भरकर) नाटक होने में पन्द्रह दिन बाकी हैं, और अभी तक हमारे पास कोई काम का आदमी ही नहीं।

बाटली०—आदमी तो मिल गया था, मगर वह कहता है, भगवान् ने मुझे गला मुफ्त दिया है,मैं भी लोगों को मुफ्त सुनाऊँगा। अगर वह आ जाता, तो काशी भर में शोर मच जाता।

[बाटलीवाला सोफ़े पर बैठ जाता है।

जय०—और हम भी उस पर ऐसी मेहनत करते, कि हीरा बना देते।

बाटली०—अरे भाई! लोग पतंगों की तरह टूटते, पतंगों की तरह। क्या स्वर है! क्या लोच है!! क्या गला है!!!

जय०—(दूसरी कुर्सी पर बैठकर) मगर किस काम का?

बाटली०—हम यहाँ रो रहे हैं, और वह नहीं आता। मेरी कम्पनी तबाह हो रही है, और वह नहीं आता। मैं उसे दो-तीन सौ रुपया महीना देने को तैयार हूँ। और वह नहीं आता (बाहर कोई द्वार खट-खटाता है।) कौन है? कह दो, सेठ साहब नहीं है।

सूरदास—(द्वार खोलकर) मैं सूरदास हूँ।

बाटली०—अरे सूरदास! (आगे बढ़कर) आओ भाई! क्या हाल है? आज तो बड़ी मेहरबानी की। (कुरसी के पास लाकर) ऐ ऐ ऐ यहाँ बैठ जाओ। कहो मज़े में तो हो ना?

सूरदास—जी हाँ, आपकी किरपा है।

बाटली०—कहिए, कैसे आए?

सूरदास—(साहस करके) आपको याद है, आपने उस दिन घाट पर मुझ से कहा था, कि……।

बाटली०—हाँ हाँ, मेरी कंपनी के द्वार तुम्हारे लिए आज भी

खुले हैं। हमें एक आदमी की……

जय०—(बात काटकर) ज़रूरत थी, वह तो हमें मिल गया है, मगर जब तुम चलकर आए हो, तो हम तुम्हें भी रख लेंगे।

[जयकृष्ण बाटलीवाले को आंख से इशारा करता है, बाटलीवाला इशारे का मतलब समझ लेता है।]

बाटली०—क्या तनख्वाह लोगे ? बोलो।

सूरदास—अब यह मैं क्या बताऊँ सेठ साहब! मेरा एक बच्चा है। मुझे उसके लिए कपड़ा भी चाहिए, खाना भी चाहिए, खिलौना भी चाहिए।

बाटली०—देखो, मैं शुरू शुरू में तुम्हें एक…।

जय०—(रोककर) तीस रुपये महीना दे देंगे।

[बाटलीवाला जयकृष्ण की ओर क्रोध से देखता है।]

सूरदास—(खुश होकर) तीस रुपये।

बाटली०—(मतलब न समझकर) पहले पहले। जब काम अच्छा करने लगोगे, तो बढ़ा दूँगा।

सूरदास—मेरे लिए तो यह भी बहुत है भाई!

[जयकृष्ण बाटलीवाले की तरफ देखता है।]

बाटली०—सूरदास! मैंने भूमि पर रेंगने वाले तुच्छ कीड़ों को यश और कीर्ति के आकाश का तारा बना दिया है। तुम तो पहले ही रागी हो, चार दिनों में चाँद बनकर चमकने लगोगे। (जयकृष्ण से) ऐग्रीमेंट! (सूरदास से) भई! तुम्हारा वह गीत मुझे आज भी याद है—'बाबा! मन की आँखें खोल।' खूब गीत है!

और खूब गाते हो ! (जयकृष्ण ऐग्रीमेंट देता है ।) लो सूरदास यहाँ अंगूठा लगा दो । (अंगूठा लगवाकर) बस !

सूरदास—तो क्या आज मुझे कुछ······।

बाटली०—(मुस्कराकर) पेशगी ! हाँ हाँ (जेब से नोट निकालकर) यह लो दस रुपये का नोट ! तो अब कल से ?

सूरदास—हाँ भई ! अब तो सूरदास बँध गया। (उठकर) तो अब चलता हूँ।

जय०—बड़ी खुशी से। (हाथ थामकर) आइए।

[सूरदास को द्वार तक पहुँचा देता है। और जब वह चला जाता है, तो द्वार बन्द करके बाटलीवाले की ओर देखता है।]

बाटली०—अब बताओ, मैंने क्या कहा था ?

जय०—रुपये में सचमुच बड़ी शक्ति है।

बाटली०—यह चाहे, तो हवा में उड़ते हुए पंछी को बाँध ले। अब मेरे नए नए नाटक निकलेंगे, अब मेरी कंपनी चलेगी, अब मेरे हाँ सोना बरसेगा। जयकृष्ण ! आज हमें यह अंधा नहीं मिला, हमें सफलता का रास्ता मिल गया है, हमारी तक़दीर बदल गई है, हमारे लिए भगवान् ने धन, यश और उन्नति के द्वार खोल दिए हैं।

दृश्य-परिवर्तन

[सूरदास रंग-भूमि पर गाता हुआ दिखाई देता है।]

गीत

छाँड़ मन! हरिबिमुखन को संग।
जिनके संग कुबुधि उपजति है परत भजन में भंग।
कहा होत पय-पान कराए विष नहिं तजत भुजंग,
कागहि कहा कपूर चुगाए, श्वान न्हवाए गंग।
खर को कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषण अंग,
गज को कहा न्हवाए सरिता, बहुरि धरै खहि अंग।
पाहन पतित बास नहिं बेधत, रीतो करत निषंग,
सूरदास खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रंग।

[गीत की समाप्ति पर लोग बड़े जोर से तालियाँ बजाते हैं, और वाह वाह का शोर मचाते हैं। सूरदास सिर झुकाता है। लोग फूल फैंकते हैं।]

[पर्दा गिरता है।]

दूसरा अंक

पर्दा उठता है, तो एक सफ़ेद पर्दे पर

'बीस साल के बाद'

लिखा दिखाई देता है, देखते देखते

यह पर्दा भी उठ जाता है।

पहला दृश्य

स्थान—शामलाल का घर

समय—दिन का तीसरा पहर

[शामलाल और लाजवन्ती]

लाजवन्ती—आपके जासूसों ने कुछ पता लगाया ?

शाम०—कुछ भी नहीं।

लाज०—मेरा ख्याल है, शंकरदास मर चुका। अगर जीता होता, तो इतने दिन कहाँ बैठा रहता ? अब जासूसों से कहिए, बस करें।

शाम०—नहीं, जब तक मैं जीता हूँ, यह खोज बन्द नहीं हो

सकती, शायद किसी दिन भगवान् सुन लें !

लाज०—बीस साल कम नहीं होते ।

शाम०—मेरा पाप भी कम नहीं है। मैंने एक बाप का दिल दुखाया है। (ठंडी साँस लेता है।)

लाज०—अब इन बातों से क्या होता है ?

शाम०—तो मुझे बताओ, मैं क्या करूँ ? ऐसा मालूम होता है, जैसे मेरा जीवन ही मेरा दंड बन गया है।

लाज०—धीरज धरिए !

शाम०—पापियों को धीरज कहाँ ? मैं चाहता हूँ, आज जाकर भाई साहब के सामने सब कुछ स्वीकार कर लूँ।

लाज०—मगर यह तो और भी भूल होगी।

शाम०—क्या तुम जानती हो ? कभी कभी ऐसा मालूम होता है, जैसे वे सब कुछ जानते हैं। उनकी एक एक बात से मेरा संदेह विश्वास का रूप धारण कर लेता है। मगर आख़िर में वे एक ऐसी बात कह देते हैं, जिससे मालूम होता है, कि वे कुछ भी नहीं जानते। यह एक एक क्षण में रहस्य खुल जाने की आशंका, यह सम्मान के ऊपर मंडराते हुए अपमान के काले बादल, यह मृत्यु के मुँह में फँसा हुआ जीवन—आह! यह सब असह्य है। एक आदमी को एक बार गोली मारकर समाप्त कर दो, यह साधारण बात है। मगर दिन रात उसके चारों तरफ़ गोलियाँ चलती रहें, और वह हर समय मौत को अपनी

तरफ़ आता देखे, और तड़प तड़प कर रह जाए, यह नरक की आग में जलने से भी भयानक है। (लाजवन्ती की तरफ मुड़कर) मुझे रोकने का यत्न न करो, मैं आज सब कुछ कह देना चाहता हूँ।

लाज०—और आपके भाई साहब का क्या हाल होता?

शाम०—उनकी आँखों से पर्दा उठ जाएगा।

लाज०—आपके भाई साहब को दुनिया में दो आदमियों से प्यार था। एक अपने बेटे से, दूसरा आप से। आपके मन में लोभ जागा, उनका बेटा खो गया। अब आप जाकर बता दीजिए, कि यह पाप आपने किया है, उनका भाई भी खो जाएगा। उन्होंने बेटे का दुख सह लिया है, उस समय उनका शरीर और मन दोनों जवान थे। मगर अब भाई का दुख न सह सकेंगे—आज उनका शरीर और मन दोनों कमज़ोर हो चुके हैं।

शाम०—(कुछ समझकर, कुछ न समझकर) मगर एक बात बताओ; क्या तुम मुझसे घृणा नहीं करतीं?

लाज०—नहीं, मैं आपके लिए मंगल-कामना करती हूँ।

शाम०—मगर एक दिन तुमने कहा था, मैं तुमसे घृणा करती हूँ।

लाज०—उस समय मेरा यही धर्म था।

शाम०—और आज कहती हो, मैं तुमसे घृणा नहीं करती।

लाज०—आज मेरा यही धर्म है।

शाम०—तो तुम चाहती हो, मैं अकेला ही इस आग में जलता रहूँ ? बहुत अच्छा ! यह आग मैंने जलाई है, इसमें मैं ही जलूँगा, और इसकी हलकी सी आँच भी अपने भाई तक न जाने दूँगा। मैं पाप के इस पथ में अकेला हूँ।

लाज०—मगर मैं तो तुम्हारे साथ हूँ।

शाम०—तू हिन्दू नारी है। तू अपने पति के पाप का फल हँसते-हँसते भोगेगी। (तेज़ी से प्रस्थान।)

लाज०—स्वामी ! तुमने पाप किया है। और तुम्हारा पाप अगर संसार के सामने खुल जाए, तो वह तुमसे घृणा करने लगे। मगर जिस तरह तुम उस पाप का प्रायश्चित कर रहे हो, उसे देखकर मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ।

[प्रस्थान]

———

दूसरा दृश्य

स्थान—सूरदास के घर में दीपक का कमरा

समय—दिन के चार बजे

[कल्लो की माँ धोबी से धुले हुए कपड़े ले रही है ।]

कल्लो की माँ—मैं कहती हूँ, बासठ थे ।

धोबी—न, इकसठ थे । यह देखिए—सूरदास जी की तीन धोतियाँ, तीन कुरते, दो कोट—आठ हुए । और दीपक की सात पतलूनें, सात कोट, पाँच कुरतियाँ, पाँच तौलिए, छै चादरें, छै कालर, चार मोज़े, पाँच गंजियाँ, छै कमीजें ।

कल्लो की माँ—और वह नीली कमीज़ कहाँ है ?

धोबी—हाँ ! वह रह गई ।

कल्लो की माँ—मानता ही न था ! अच्छा पहले वह कमीज़ ला, धुलाई के लिए कपड़े फिर मिलेंगे । (कपड़े उठाकर मेज़ की ओर जाते हुए) पिछली बार एक धोती रह गई थी । दोनों लेकर आओ ।

(धोबी का जाना, सूरदास का आना ।)

सूरदास—कल्लो की माँ ! दीपक के कपड़े आ गए ?

कल्लो की०--हाँ बाबा! आ गए। आज कपड़े न आते, तो मेरी शामत आ जाती।

[कोई द्वार खटखटाता है।]

सूरदास--कौन है रे?

आवाज़--दरज़ी! (दरज़ी का प्रवेश)

कल्लो की माँ--आज यह दरज़ी काहे के लिए आया है?

सूरदास--(कुरसी पर बैठकर) दीपक कहता था, दो सूट सिलाने हैं।

कल्लो की०—बाबा! आप लड़के का सिर फिरा देंगे। इतने कपड़े कम हैं, जो और सिलाना चाहते हैं?

सूरदास—कल्लो की माँ! तुम आजकल के लड़कों को नहीं जानतीं।

कल्लो की०—मगर मैं यह जानती हूँ, कि आप लड़के को ख़राब कर देंगे। (दरज़ी से) ओ दरज़ी के बच्चे! भाग जा। (दरज़ी डरकर भाग जाता है।) हर रोज़ सूट! हर रोज़ सूट!!

सूरदास—(मुस्कराकर) अच्छा भई तुम्हारी मरज़ी!

[कल्लो की माँ दीपक का सूट खूँटी पर लटका देती है, और बाक़ी कपड़े अलमारी में तह करके रखती है। इतने में नवयुवक दीपक नेकटाई बाँधते-बाँधते प्रवेश करता है।]

दीपक—कल्लो की माँ ! मेरा सूट निकाला ?

[कल्लो की माँ खूँटी की ओर इशारा करती है, और तौलिए लेकर बाहर चली जाती है। दीपक खूँटी के पास जाकर कपड़े पहनता है और गुन-गुनाता है।]

मूरख मन ! होवत क्यों हैरान ?

सूरदास—दीपक ! क्या आज रेडियो में यही गीत गा रहे हो ?

दीपक—हाँ दादा !

सूरदास—मगर मैंने तुम्हें ऐसे तो नहीं सिखाया था बेटा !

दीपक—वहाँ ठीक गाऊँगा।

[कल्लो की माँ कपड़े लिए आती है, और भूल से एक पुस्तक गिरा देती है।]

दीपक—(मुड़कर देखता है।) मेरी पुस्तक गिरा दी ? ओ बाबा !

कल्लो की माँ—तुम तो इस तरह चिल्लाते हो, जैसे तुम्हारी पुस्तक नहीं गिरी, आकाश गिर पड़ा है।

[पुस्तक मेज़ पर रख देती है।]

दीपक—मैं कै बार कह चुका हूँ, कि मेरी कोई पुस्तक ज़मीन पर न गिरे।

कल्लो की०—और मैं कै बार कह चुकी हूँ, कि तुम सीधी तरह बोला करो ?

सूरदास—अरे बाबा ! यह तुम लोगों की बात बात में लड़ने की आदत बुरी ।

दीपक—मैंने क्या कहा है ? आप ही बताइए ।

कल्लो की०—और मैंने क्या कहा है ?

सूरदास—अरे भाई ! किसी ने कुछ नहीं कहा, अब झगड़ा समाप्त करो । ज़रा सी बात हो जाए, उसी में लड़ने लगते हैं ।

[मोटर के हार्न की आवाज़ आती है ।]

दीपक—दादा ! आपकी थियेटर की गाड़ी आई है ।

[दीपक बूट के फीते बाँधने लगता है । सूरदास अँगरखा पहनता है ।]

सूरदास—अभी तुम तो कुछ देर ठहरकर जाओगे ना ?

दीपक—जी नहीं । मुझे एक मित्र के हाँ भी जाना है ।

सूरदास—मैं आज तुम्हारा गाना सुनूँगा ।

[सूरदास चला जाता है, कल्लो की माँ मज़े से एक पुस्तक उठाती है, तो उसमें से एक चित्र निकल आता है ।]

कल्लो०—यह किसकी तसवीर है ?

दीपक—(डरकर) कल्लो की माँ—

कल्लो०—तो आजकल यही पढ़ाई होती है ? बुलाऊँ सूरदास को ? बोलो ।

दीपक—(मिन्नत करते हुए) न कल्लो की माँ !

[कल्लो की माँ मुस्कराती है, दीपक पुस्तक लेकर चला जाता है ।]

तीसरा दृश्य

स्थान—रूपकुमारी का घर

समय—शाम

[रूपकुमारी कपड़े पहन रही है, इतने में उसकी विधवा माँ यशोदा का प्रवेश ।]

यशोदा—तैयार हो गई ? चलो ।

रूपकुमारी—कहाँ ?

यशोदा—लीला की पार्टी में, और कहाँ ?

रूप०—मगर मैं तो आज न जा सकूँगी ।

यशोदा—क्यों ?

रूप०—आज दीपक की चाय है ।

यशोदा—(क्रोध से) तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया ?

रूप०—वाह ! कल आप के सामने ही तो कहा था ।

यशोदा—(टहलते टहलते) मेरा ख्याल है, तुम्हें चलना चाहिए ।

रूप०—और दीपक क्या कहेगा ?

यशोदा—कहना क्या है ? मैं समझा दूँगी । (पास आकर हाथ पकड़ लेती है) चलो ।

रूप०—आप जाइए। मेरा जी नहीं चाहता।

यशोदा—(पास बैठकर) देखो, अब तुम छोटी नहीं हो, इस लिए मैं तुम से कुछ छुपाना नहीं चाहती। बात यह है, कि वहाँ रतनलाल भंडारी भी आ रहा है। यह भंडारी पंजाब के प्रसिद्ध लखपति हीरालाल का संबन्धी है, और अभी विलायत से इंजीनियर बनकर आया है। (थोड़ी देर चुप रहने के बाद) आख़िर तुम्हारा ब्याह भी तो कहीं करना होगा।

(रूपकुमारी क्रोध से उठकर परे चली जाती है, और दीवार के साथ पीठ लगाकर खड़ी हो जाती है।)

रूप०—आप ऐसी बातें मुझ से न किया करें। मैं वहाँ नहीं जाऊँगी।

यशोदा—(मुस्कराकर) इतनी बड़ी हो गई, मगर फिर भी पगली ही रही। लड़कियों को घर में तो राजे-महाराजे भी नहीं बैठा रखते।

रूप०—(और भी चिढ़कर) आप फिर वही बातें करने लगीं!

यशोदा—(प्यार से पुचकारकर) अच्छा अब नहीं करती। चलो चलें।

रूप०—मैं नहीं जाती।

यशोदा—(क्रोध से) अच्छा न जाओ।

[चली जाती है।]

[दीपक द्वार में आकर खड़ा हो जाता है।]

रूप०--(हाथ-घड़ी देखकर) बीस मिनट लेट !

दीपक--मुझे अफसोस है। (आकर कुरसी पर बैठ जाता है।) आज माँ जी कुछ खफा हैं क्या ? मैंने नमस्ते कही, उन्होंने कुछ जवाब ही नहीं दिया।

रूप०--(मुस्कराकर) कुछ सोच रही होंगी। (पुकारकर) रंजीत ! चाय यहीं ले आओ।

दीपक--मगर माँ जी कहाँ गई हैं ?

रूप०--यहाँ पास ही एक पार्टी है।

दीपक--और तुम क्यों नहीं गई ?

रूप०--अगर मैं चली जाती, तो तुमको यहाँ चाय कौन पिलाता ?

दीपक--(मेज़ पर हाथ फैलाकर) मामूली बात थी।

रूप०--तुम्हारे लिए। अभी मैंने एफ. ए. पास किया है, जब तुम्हारी तरह बी. ए. की परीक्षा दे लूँगी, तो मैं भी बेपरवा और असभ्य हो जाऊँगी।

दीपक--तो मैं असभ्य हूँ ?

रूप०--जो आदमी किसी को चाय पर बुलाकर आप कहीं चले जाने को बुरा न समझे, उसके लिए और शब्द कौन सा है ?

दीपक--माँ की आज्ञाकारिणी बिटिया रानी !

[रंजीत चाय का सामान रख जाता है। रूपकुमारी चाय बनाती है।]

रूप०—देखूँगी, तुम भी किसी दिन बाप के आज्ञाकारी बेटा राजा बनते हो, या नहीं ? (चीनी ज़्यादा डाल देती है।)

दीपक—मालूम होता है, आज तुम्हारे सारे घर की चीनी मेरे ही प्याले में आजाएगी।

रूप०--(अपनी भूल समझकर) तो आप इसे रहने दें, मैं दूसरा प्याला तैयार किए देती हूँ।

दीपक--(प्याला लेकर) मुझे ज्यादा चीनी पीने की आदत है। (चाय पीता है।)

रूप०--(अपना प्याला तैयार करते हुए) भंडारी साहब कहा करते हैं, ज़्यादा चीनी पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

दीपक—(चाय पीना बन्द करके) यह भंडारी कौन है ?

रूप०—इंजीनियर है। अभी विलायत से पढ़कर आया है, और माँ जी की राय में बड़ा योग्य आदमी है।

दीपक—तो यह भंडारी साहब चाय में नमक मिलाकर पीते होंगे।

रूप०--नमक मिलाकर नहीं पीते, (मुस्कराकर) बरफ़ मिलाकर पीते हैं।

[दीपक कहकहा लगाकर हँसता है।]

दीपक—दिलचस्प आदमी मालूम होता है।

रूप०—पूरा सनकी है । (दीपक खुश होता है ।) मगर है रौनकी, (दीपक उदास हो जाता है ।) और चाय दूँ ।

दीपक—(मुँह फुलाकर) नहीं ! (सोच में पड़ जाता है)

रूप०—आप क्या सोच रहे हैं ?

दीपक—कुछ नहीं ।

रूप०—मैं बताऊँ ? आप सोच रहे हैं, कि यह भंडारी अगर इस घर में रोज़-रोज़ आने लगा, तो आपको भी ठंडी चाय मिलने लगेगी ।

दीपक—भगवान् हमें सदा गरम चाय ही देगा ।

(बाहर से मोटर-हार्न की आवाज़)

रूप०—(चौंककर) माँ जी आ गईं ! इतनी जल्दी ।

[यशोदा और भंडारी साहब का प्रवेश । दीपक और रूप दोनों खड़े हो जाते हैं ।]

भंडारी—(दीपक को देखकर, यशोदा से) मेरा मतलब है, क्या आप मेरा इनसे परिचय करा देंगी ।

यशोदा—(भंडारी की तरफ़ इशारा करके) मिस्टर रतनलाल भंडारी ! और (दीपक की तरफ़ इशारा करके) आपने सूरदास का नाम तो सुना ही होगा, उनके पुत्र दीपकचन्द !

भंडारी—अच्छा सूरदास के पुत्र ! उनसे तो मैं एक आध बार मिला भी हूँ । (हाथ मिलाकर) So very glad to see you*

---

* आप से मिलकर बड़ी खुशी हुई ।

आपके पिता जी तो खूब गाते है। अगर वे इंगलैंड में होते, तो चाँदी के महल खड़े कर लेते। क्या आपको भी कुछ गाने का शौक है ?

यशोदा—(नाराज़गी को दबाने का यत्न करते हुए) हाँ !

रूप०—गाने का शौक़ ! सूरदास के बाद इन जैसा गाने वाला शहर भर में दूसरा कोई नहीं है।

[यशोदा रूप की ओर क्रोध से देखती है।)

भंडारी—खूब ! Worthy son of a worthy father !*

यशोदा—रूप ! भंडारी साहब कहते हैं, चलो आज नाटक देखने चलें।

भंडारी—(दीपक से) आप भी चलिए। मेरा मतलब है जब मैं इंगलैंड में था, तो हर इतवार को......

दीपक—मुझे क्षमा कीजिए, आज मुझे रेडियो पर गाना है और (हाथ घड़ी देखकर) मुझे पहले ही देर हो चुकी है।

यशोदा—इनके तो घर में गंगा है।

दीपक—(मुस्कराकर) जी हाँ, नमस्ते।

[दीपक का प्रस्थान]

भंडारी—दिलचस्प आदमी है। मेरा मतलब है, शक्ल-सूरत से

---

* योग्य पिता का योग्य पुत्र।

मालूम होता है, कि इसमें जीवन है, और जोश है, और Personality अर्थात् व्यक्तित्व है। इंगलैंड में लोग ऐसे नौजवानों को बहुत पसन्द करते हैं।

यशोदा—क्या आप एक प्याला चाय न पियेंगे? रूप! मंगवाओ ना!

भंडारी—(रोककर) चाय मेरी सबसे बड़ी कमज़ोरी है। मगर इस समय नहीं। इस समय चलकर सीटें बुक कराना है।

[भंडारी का प्रस्थान, रूप अपने कमरे मे जाना चाहती है।]

यशोदा—(गंभीरता से) रूप!

रूप०—हाँ माँ!

यशोदा—मुझे तुम्हारी यह बातें बिलकुल पसन्द नहीं हैं।

रूप०—(मुड़कर) मेरी कौन सी बातें माँ!

यशोदा—मैं नहीं चाहती, दीपक यहाँ आया करे।

रूप०—(सहमकर) क्यों?

यशोदा—क्योंकि अब मुझे सब कुछ मालूम हो गया है।

रूप०—क्या मालूम हो गया है?

यशोदा—बेटी! मेरा मुँह न खुलवाओ। क्या तुम जानती हो, वह किसका बेटा है?

रूप०—सूरदास का!

यशोदा—सूरदास का बेटा होता, जब भी कोई बात थी।

मगर वह सूरदास का बेटा भी नहीं है। मुझे आज ही मालूम हुआ है, कि सूरदास ने उसे घाट पर पड़ा पाया था। जाने किसका बेटा है ? किसी भंगी का, या चमार का ?

रूप०—बिलकुल झूठ !

यशोदा—बिलकुल सच !

रूप०—मैं कभी नहीं मान सकती।

यशोदा—तुम्हारे न मानने से क्या होता है ? अब आया, तो साफ़ कह दूँगी, कि यहाँ न आया करे। मुझे किसी का डर नहीं है।

रूप०—बहुत अच्छा ! अब वह यहाँ कभी न आएगा।

[रूप उठकर मेज़ के पास चली जाती है, और एक चिट्ठी लिखती है। इसके बाद नौकर बुलाने की घंटी बजाती है।]

—मैंने लिख दिया है, कि वह यहाँ न आया करें।

यशोदा—बहुत अच्छा किया !

[नौकर आता है।]

रूप०—यह चिट्ठी डाक में डाल दो।

[नौकर चला जाता है।]

रूप०—जहाँ अपमान होता हो, वहाँ कोई क्यों आएगा ?

[जाकर सोफ़े पर बैठ जाती है। यशोदा धीरे-धीरे उसके पास जाकर उसे मनाना चाहती है।]

यशोदा—बेटी ! इसमें क्रोध की कौन सी बात है ? ज़रा सोचो।

रूप०—क्या सोचूँ ? विद्या आपने मुझे वह दी है, जो भारत-वर्ष में बहुत कम लड़कियों को दी जाती है। पुस्तकें प्रोफ़ेसरों ने मुझे वह पढ़ाई हैं, जिनमें स्वाधीनता को संसार की सबसे बड़ी विभूति और जात-पात की ऊँच-नीच को मानव-हृदय का सबसे बड़ा पतन सिद्ध किया गया है, और अब आप मुझसे आशा उन कामों की रखती हैं जो मेरी अठारहवीं शताब्दी की पड़दादी अपनी अनपढ़ देहाती बेटियों से रखती थी। मैं कहती हूँ, अगर आपकी यही कामना थी, तो आपने मुझे अंगरेज़ी कालेज के बदले किसी हिन्दी पाठशाला में क्यों नहीं पढ़ाया ? मैं उसी जलवायु में पलती, उसी में बड़ी होती, और बात बात में आपकी आँख का इशारा देखा करती।

यशोदा—मगर बेटी ! मैं जो कुछ कह रही हूँ, तुम्हारे ही भले के लिए कह रही हूँ।

रूप०—मेरे भले के लिए ? आप मेरी पसन्द और खुशी की ज़रा परवा न करते हुए अपने दिल की इच्छा मुझ पर ज़बरदस्ती ठूँसना चाहती हैं, यह मेरे भले के लिए है ? आप इसे मेरा भला समझती होंगी, मैं इसे अपना भला नहीं समझती।

यशोदा—तो मैंने तुम्हें जो पढ़ाया है, यह मेरा अपराध है ?

रूप०—(रोते हुए) सब मेरा ही अपराध है !

[टेलीफ़ोन की घंटी बजती है। यशोदा उठकर रिसीवर हाथ में लेती है।]

यशोदा—(क्रोध पूर्ण स्वर से) **कौन है ? हैलो, कौन है ?**

[कोई जवाब नहीं आता, यशोदा टेलीफ़ोन हाथ से रख देती है। घंटी फिर बजती है। यशोदा टेलीफ़ोन उठाती है; इसके साथ ही एक तरफ़ का पर्दा उठता है; जहाँ भंडारी टेलीफ़ोन पर बात-चीत करता दिखाई देता है। अब टेलीफ़ोन पर इधर यशोदा है, उधर भंडारी।]

इधर—

यशोदा—(मुस्कराकर) **क्या भंडारी साहब हैं ? कहिए !**

उधर—

भंडारी—मेरा मतलब है, मैंने टिकट ख़रीद लिए हैं।

इधर—

यशोदा—बहुत अच्छा ! हम अभी आ रहे हैं.....जी पाँच मिनट में ! (रूप जूता खोल देती है। यशोदा उससे पूछती है) **यह तुमने जूता क्यों खोल दिया ?**

उधर—

[अन्तिम वाक्य भंडारी टेलीफ़ोन पर सुनता है, और समझता है, कि यह मुझसे कहा गया है। वह हैरान होता है।]

भंडारी—मैंने जूता कब खोला है ? हैलो—मेरा मतलब है—

इधर—

यशोदा—(टेलीफ़ोन पर) **हम अभी आ रहे हैं। हैलो.....**

रूप०—मगर मैं नहीं जाऊँगी।

यशोदा—(टेलीफ़ोन के रिसीवर पर हाथ रखकर और रूप को सम्बोधन करके) क्यों ?

रूप०—(रुखाई से) अब अगर किसी का जी न चाहे, तो वह क्या करे ? आप चले जाइए !

यशोदा—(क्रोध मे हाथ रिसीवर से हट जाता है।) इतना पढ़-लिखकर तुमने यही सीखा है ?

[इधर यशोदा के मुँह से यह शब्द निकलते है, उधर भंडारी के कानों में जा पहुँचते है।]

भंडार—(आश्चर्य से) पढ़-लिखकर मैंने क्या सीखा है ? हैलो ....हैलो..........

इधर—

रूप०—जो कुछ भी हो, मैं नहीं जाऊँगी।

यशोदा—(टेलीफ़ोन पर हाथ रखकर) मगर ज़रा सोचो। अगर तुम न गई, तो भंडारी क्या कहेगा ?

रूप०—जो मरज़ी है, कहे।

[यशोदा जोश में फिर भूल जाती है, कि उसके हाथ में रिसीवर है।]

यशोदा—अच्छा ! बक बक मत करो।

उधर--

भंडारी—बक बक मत करूँ ?

इधर—

[यशोदा टेलीफोन का रिसीवर हाथ से रख देती है, इसके साथ ही भंडारी के ऊपर पर्दा गिर जाता है। अब एक तरफ यशोदा मुँह फैलाकर बैठ जाती है, दूसरी तरफ रूप। रूप अनजाने ही रेडियो खोल देती है, इसके साथ ही दीपक का गीत शुरू हो जाता है]

गीत

मूरख मन ! होवत क्यों हैरान ?
सचमुच तेरी रात अँधेरी, संकट में है प्राण,
बाँध कमरिया, ढूँढ डगरिया, कृपा करे भगवान।
मूरख मन होवत···

दुख सुख दोनों एक बराबर दो दिन के मेहमान,
यह भी देखा वह भी देख ले दोनों को पहचान।

[पर्दा गिरता है, मगर गीत जारी रहता है]

चौथा दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का घर

समय--संध्या

[रेडियो पर गीत गाया जा रहा है। रायबहादुर हीरालाल कमर पर हाथ धरे इधर उधर टहल रहे हैं। और दीपक का गीत सुन रहे हैं, मगर यह नहीं जानते, कि यह गीत गाने वाला उनका बेटा है।]

गीत

मूरख मन! होवत क्यों हैरान?

दोहा

आनन्द नगरिया दूर नहीं मन! काहे को घबरावत है।
भगवान के घर से तेरे लिए इक सुख-संदेसा आवत है॥

मूरख मन! होवत···

[गीत की समाप्ति पर रायबहादुर रेडियो बन्द कर देते हैं। शामलाल प्रवेश करता है।]

हीरा०--शामलाल! अभी अभी रेडियो पर किसी ने बहुत बढ़िया गीत गाया है--मूरख मन होवत क्यों हैरान! उसकी अंतिम

पंक्ति थी-भगवान के घर से तेरे लिए इक सुख-संदेसा आवत है। मैं सोचता हूँ, क्या सचमुच मेरे लिए कोई सुख-संदेसा आने वाला है? क्या सच-मुच मेरे जीवन के यह काले दिन समाप्त होने वाले हैं?

शाम०—हो सकता है, भाई साहब! हो सकता है!

हीरा० (हवा में देखते हुए) आज मेरे कानों ने आनन्द का संगीतमय संदेसा सुना है। आज मेरा मन आशा की लाठी लेकर खड़ा होने का यत्न कर रहा है।

शाम०—मैं भी आप को आशा दिलाता हूँ।

हीरा०—मगर शामलाल! मुझे एक बात बताओ। जो आदमी रुपया लेकर किसी को आशा और सान्त्वना देता है, उस की आशा और सान्त्वना का क्या मूल्य है?

शाम०—क्या मतलब?

[शामलाल समझता है शायद हीरालाल ने उस पर चोट की है। इस लिए वह डर जाता है।]

हीरा०—नहीं समझे? देखो मैं समझाता हूँ। मैंने तुम्हें रुपया दिया, तुमने मुझे सान्त्वना दी। इस सान्त्वना का क्या मूल्य है? वह सान्त्वना तुमने मुझे दी नहीं, मेरे हाथ बेची है। मैंने उसे प्रसाद के रूप में नहीं पाया, मैंने उसे मूल्य देकर खरीदा है। वास्तविक सान्त्वना वह है जिसके आगे और पीछे धन का सवाल न हो।

शाम० -(और भी सहमकर) मगर भाई साहब! मैंने तो…

हीरा०—(बात काटकर) यह आदमी जो गा रहा था, अगर इसे रेडियो वाले पैसे न देते, तो वह कभी न गाता। अगर मैं यह रेडियो का सेट न ख़रीदता, तो मैं यह गाना कभी न सुन सकता। इस लिए इस सान्त्वना के गीत और गीत की सान्त्वना दोनों का दैवी महत्त्व और दैवी मूल्य नहीं है। इन्हें हर कोई ख़रीद सकता है।

[शामलाल शान्ति की साँस लेता है।]

हीरा०—शामलाल ! मैंने सुना है, तुमने दलीप को खोजने के लिए जासूस छोड़ रखे हैं। और मैंने यह भी सुना है, कि तुम उनका खर्च अपनी गिरह से दे रहे हो। क्या यह सच है ?

शाम०—(सिर झुकाकर) जी हाँ।

हीरा०—क्या फ़ायदा ? अब कुछ न होगा।

[नौकर आता है]

शाम०—क्या है ?

नौकर—तार !

[शामलाल तार लेकर पढ़ता है। नौकर चला जाता है।]

शाम०—(खुशी से) भाई साहब ! बधाई हो, भगवान ने सुख का संदेसा भेज दिया।

हीरा०—क्या है ?

शाम०—मेरे आदमियों ने सूचना दी है, कि दलीप का पता मिल गया।

हीरा०—मेरा दिल तो अब इतना मुरदा हो गया है, कि यहाँ आशा आती भी है, तो थोड़ी देर में मर जाती है।

शाम०—(सुना अनसुना करके) वह कहते हैं, वह काशी में है मैं वहाँ जाना चाहता हूँ।

हीरा०—तुम्हें आशा है ?

शाम०—मुझे विश्वास है।

हीरा०- तो चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ। शायद मेरा सोया हुआ भाग्य काशी में ही जागने वाला हो!

[प्रस्थान]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—सूरदास का घर

समय—दोपहर

[दीपक पूरा सूट पहने घबराए हुए इधर उधर टहल रहा है, और कुछ सोच रहा है। इतने में वह जेब से एक पत्र निकालता है, और उसे ऊँची आवाज़ से पढ़ता है।]

दीपक—दीपक! मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ, कि तुम कृपया हमारे घर न आया करो—तुम्हारी रूप०

[चिट्ठी को लपेट कर फिर जेब में रख लेता है। कल्लो की माँ का प्रवेश।]

कल्लो की माँ—दीपक! (दीपक उत्तर नहीं देता। कल्लो की माँ दीपक के निकट आ जाती है, और मातृ-स्नेह से कहती है।) **क्यों दीपक! कहाँ जा रहे हो?**

[दीपक उत्तर दिए बिना बाहर चला जाता है।]

कल्लो०—(ख़फ़ा होकर) **वाह रे! अभी तो सूरदास की कमाई खा रहा है, अभी से इतना गर्व!**

[सूरदास का प्रवेश]

सूरदास--क्या है कल्लो की माँ ? क्या हुआ है ?

कल्लो०—(और भी क्रोध से) होना क्या है ? सूट पहनकर खड़ा था। मैंने पूछा, कहाँ जा रहे हो ? मेरी ओर देखा, और खट खट करके बाहर चला गया। मेरी बात का जवाब ही कोई नहीं।

सूरदास--(एक कुरसी पर बैठते हुए) कौन बाहर चला गया ?

कल्लो०--वही आपका दीपक और कौन ? आपने उसका माथा कुछ खराब कर दिया है, कुछ और खराब कर देंगे।

सूरदास--(मुस्कराकर) और तुमने उसका माथा खराब नहीं किया। ज़रा सा उदास हो जाता है, तो मरने लगती हो।

कल्लो०--झूठी बात ! मैं कभी नहीं मरती ! (थोड़ी देर बाद) इतना भी नहीं बता सकता था, कि कहाँ जा रहा हूँ ?

सूरदास—मैं समझ गया। आज उसका परीक्षा-फल निकलने वाला है वह देखने जा रहा होगा, तुम पूछ बैठीं, कहाँ जा रहे हो ? उसे गुस्सा चढ़ गया। तुम्हें कितनी बार समझाऊँ, कि जब कोई किसी काम से बाहर जाने लगे, तो उसे कहाँ पूछने से काम खराब हो जाता है।

कल्लो०—(घबराकर) अब मुझे क्या मालूम था ?

सूरदास—चलो अब चिन्ता करने से क्या होता है ? भगवान् भला करेगा।

[कल्लो की माँ सोचती है।]

सूरदास—कल्लो की माँ ! दीपक पास हो जाय, तो मैं एक सौ एक रुपया ग़रीबों में बाँटूँगा।

[कल्लो की माँ चुप रहती है]

सूरदास—अच्छा कल्लो की माँ ! तुम्हें मालूम है, दीपक आज-कल सारा-सारा दिन कहाँ ग़ायब रहता है ?

कल्लो०—मुझे क्या मालूम, कहाँ रहता है ? आप तो उसे कुछ कहते ही नहीं।

सूरदास—आज आने दो। ऐसा डाटूँगा, कि याद ही रखे।

कल्लो०—आप उसे डाँटेंगे ? डाँट चुके !

सूरदास—यह तो ठीक है, वह एक बार दादा कह देता है, मेरा सारा क्रोध पानी-पानी हो जाता है।

कल्लो०—मेरी भी तो यही दशा है। वह ज़रा सा मुँह मैला करले, फिर मेरे मुँह से बात ही नहीं निकलती।

सूरदास—तो कल्लो की माँ ! तुम ही बताओ, क्या करें ?

कल्लो०—मैं बताऊँ ? (निकट जाकर) अब उसका ब्याह कर दीजिए।

सूरदास—(मुस्कराकर) यह तो मैं भी सोच रहा था, मगर पहले कोई बहू बताओ।

कल्लो०—बहू दीपक ने पसन्द कर ली।

सूरदास—(चौंककर) अरे ! क्या सच-मुच ? कैसी है ?

कल्लो०—भले घर की है, पढ़ी-लिखी है, खूबसूरत है।

सूरदास—भगवान्! क्या तू मेरी आँखें दो घड़ी के लिए नहीं खोल सकता? एक बार देख लूँ, कि मेरे दीपक की बहू कैसी है?

कल्लो की माँ—सूरदास! जी छोटा न करो।

सूरदास—कल्लो की माँ, दीपक की बहू तुमने देखी है?

कल्लो०—तसवीर देखी है। (सूरदास सोचता है। दरज़ी आकर दरवाज़े में खड़ा हो जाता है।) आपने फिर दरज़ी को बुलाया है?

सूरदास—दीपक कहता था, दो नए सूट--

कल्लो०—मैं कहती हूँ, अब दीपक के सूटों का ख्याल छोड़िए और बहू के लिए साढ़ियाँ ख़रीदिए!

सूरदास—(खुश होकर) कल्लो की माँ! मैं अभी जाता हूँ।

दरज़ी—और मुझे क्या हुक्म है?

कल्लो०—तुम दो-चार दिन के बाद आना। अब तो बहुत सा काम निकलने वाला है।

छठा दृश्य

स्थान—रास्ता

समय—दिन के चार बजे

[कुछ विद्यार्थी टैनिस के रैकिट लिए हुए आते हैं।]

एक विद्यार्थी—यार ! उसके सितारे बड़े ज़बरदस्त हैं !

दूसरा विद्यार्थी—तो तुम्हें आशा नहीं थी, कि वह यूनीवर्सिटी में प्रथम रहेगा, सितारे अच्छे थे, प्रथम रह गया।

तीसरा०—(पहले से) तुम दीपक की प्रशंसा नहीं करते, उसके सितारों की प्रशंसा करते हो।

पहला०—मेरा यह मतलब नहीं था।

दूसरा०—मतलब क्यों नहीं था ? द्वेषाग्नि में फुँके जाते हो !

तीसरा०—सच्ची बात तो यह है, कि दीपक में योग्यता भी है, परिश्रम भी है।

दूसरा०—और भलमनसाहत भी है। (पहले से) क्यों दोस्त !

पहला०—भाई ! तुम तो हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ गए, जैसे मैं दीपक का दुश्मन हूँ।

दूसरा०—दुश्मन तो नहीं हो, मगर उससे जलते ज़रूर हो।

[एक तरफ़ देखता है।]

तीसरा०—क्या है ?

दूसरा०—दीपक आ रहा है। घर जाने के कष्ट से बच गए।

[दीपक का प्रवेश]

पहला०—(आगे बढ़कर और हाथ मिलाकर) भाई बहुत बहुत Congratilations * तुमने कालेज का सिर ऊँचा कर दिया।

दीपक—(झूठी हँसी से) Thank you !†

दूसरा०—(हाथ मिलाकर) अब जलसा कब मिलेगा ?

दीपक—तुम्हारे यहाँ मिठाई खा चुकने के बाद !

तीसरा०—(चिल्लाकर) दुहाई राम की ! यह कभी नहीं हो सकता। हम सिर्फ़ पास हुए हैं, तुम यूनिवर्सिटी में सर्वप्रथम आए हो।

पहला०—हम पास हुए हैं, मगर रेंग कर। तुमको Feast ‡ देनी होगी।

दूसरा०—न देंगे, तो इनके पिता को जा पकड़ेंगे।

दीपक—(बुझे हुए मन से मुस्कराने का यत्न करते हुए) उनको चाहे पकड़ो, चाहे न पकड़ो, वह Feast ज़रूर देंगे।

पहला०—मगर यार ! तुम आज खुश नज़र नहीं आते।

---

*बधाई। † धन्यवाद। ‡ भोज।

क्या बात है ?

दीपक--तुम पागल हो।

पहला०—(दूसरे से) ज़रा महाशय जी की आँखें देखो। है कहीं खुशी की चमक ? सच बताना।

दीपक--अरे भाई ! क्या कभी यह भी सम्भव है, कि कोई न केवल पास हो, बल्कि यूनीवर्सिटी में सर्वप्रथम रहे, और फिर भी खुश न हो। और फिर उसी दिन, और यह ख़बर सुनने के एक-दो घंटे बाद।

तीसरा०--अच्छा देखते हैं। (दीपक से) ज़रा हँसो तो--

दीपक--तुम चाहते हो, मैं पागल हो जाऊँ ?

दूसरा०—अगर तुम आज भी पागल नहीं हो गए, तो तुम आदमी नहीं हो।

दीपक--तो हम क्या हैं ?

तीसरा०—या इस दुनिया के पत्थर, या उस दुनिया के देवता।

[सब मित्र हँसते हैं।]

पहला०—(दूसरे से) देखिए ! अब इनकी—मेरा मतलब है मिस्टर दीपक की आँखें चमकेंगी।

दूसरा० और तीसरा०—हम सूत्र नहीं समझते, भाष्य करो।

पहला०—(इशारा करके) मिस रूपकुमारी आ रही हैं।

[दीपक घबराता है।]

दीपक—तो भाई ! मुझे आज्ञा दो, एक बड़ा ज़रूरी काम है।

[दीपक जाना चाहता है।]

तीसरा०—(दीपक का हाथ पकड़कर) क्या मिस रूपकुमारी से बोल-चाल बन्द है आजकल ?

दीपक—नहीं। (हाथ छुड़ाना चाहता है।)

तीसरा०—तो फिर ज़रा ठहरो। एक बधाई और बटोर लो। आज तुम्हारे जीवन में सुख का सबसे बड़ा दिन है।

दीपक—(भर्राई हुई आवाज से) नहीं भाई ! तुम नहीं जानते। आज मेरे जीवन में दु:ख का सबसे बड़ा दिन है।

[दीपक हाथ छुड़ाकर भाग जाता है। तीनों मित्र आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखते है। रूपकुमारी प्रवेश करती है, तीनों मित्र हाथ बाँधकर नमस्ते कहते है।]

एक विद्यार्थी—आपने सुना, बी. ए. का परीक्षा-फल निकल गया।

रूप०—और मैंने यह भी सुना, कि आप तीनों दोस्त पास हो गए हैं। बधाई हो।

तीनों०—Thank you ! मिस रूपकुमारी।

एक०—मिस्टर दीपक यूनीवर्सिटी भर में अव्वल रहे।

रूप०—आज उसका बाप कितना खुश होगा, क्या आप यह सोच भी सकते हैं ? मैं बधाई देने गई थी, तो खुशी के मारे उनके

मुँह से आवाज़ न निकलती थी। आज मैंने उन अंधी आँखों से प्रेम के आँसू बहते देखे हैं। कहता था, आज मेरे जीवन में खुशी का सबसे बड़ा दिन है।

दूसरा०—मगर दीपक कहता था, आज मेरे जीवन में दुख का सबसे बड़ा दिन है।

रूप०—(घबरा कर) आपसे कहाँ और कब मुलाक़ात हुई ?

तीसरा०—अभी तो यहाँ हमारे पास खड़ा था। इधर गया है।

रूप०—तो मुझे आज्ञा दीजिए। मैं कहीं बधाई देने में सबसे पीछे न रह जाऊँ।

[प्रस्थान]

तीसरा०—(पहले से) कुछ समझे ?

पहला०—(सिर हिलाकर) बिलकुल नहीं।

तीसरा०—अगर इस घोंघे में इतनी बुद्धि होती तो यूनीवर्सिटी में अव्वल न रह जाता। दीपक रूप से ख़फ़ा है।

[तीनों का प्रस्थान।]

———

सातवाँ दृश्य

स्थान--गंगा का किनारा

समय--दिन के साढ़े चार बजे

[दीपक और राजकुमारी बातें करते हुए आते हैं।]

दीपक--(इधर उधर देखकर) हम कहाँ जा रहे हैं ?

रूप०--कहीं भी नहीं।

दीपक--फिर भी--

रूप०--(दीपक को वृक्ष के एक टूटे हुए तने पर बिठाकर) यहाँ बैठ जाओ। (रूपकुमारी स्वयं सामने पड़े हुए दूसरे तने पर बैठ जाती है।) क्या आनन्द के अवसर पर आदमी को साधारण सभ्यता की मर्यादा भी भूल जाती है ?

दीपक--(रुखाई से) मैं तुम्हारा आशय नहीं समझा।

रूप०--आशय यह है कि मैंने तुम्हें बधाई दी थी, तुमने मुझे धन्यवाद भी नहीं कहा। ठीक है, अब तुम बड़े आदमी हो गए हो, तुम्हें हम ग़रीबों की क्या परवाह है ?

दीपक--मैं एक बात कहूँ ?

रूप०--एक नहीं दो कहिए।

दीपक--तुम समझ में न आने वाली एक पहेली हो। कल साँझ को तुमने मुझे (जेब में हाथ डालकर) यह पत्र लिखा था,

आज तुम फिर उसी तरह हँस-हँसकर बातें कर रही हो !

[रूपकुमारी जवाब नहीं देती है ।]

दीपक—यह पत्र मुझे मिल गया है, और मैंने इसे पढ़ लिया है ।

[रूपकुमारी चुप रहती है ।]

दीपक—मगर मुझे आश्चर्य्य है, कि तुमने मुझे यह पत्र क्यों लिखा ? मेरा ख्याल है, मेरा कोई दोष नहीं है ।

[रूपकुमारी ठंडी आह भरती है और उठकर परे चली जाती है । दीपक समझता है, उसके प्रश्न ने रूपकुमारी का दिल दुखा दिया है । वह भी उठकर उसके पास चला जाता है, और उससे क्षमा माँगता है ।]

दीपक—मिस रूप ! अगर मेरी बात से तुम्हारा दिल दुखा हो, तो मैं क्षमा माँगता हूँ ।

रूप०—(सजल नेत्रों से) तुम्हें क्षमा माँगने की क्या पड़ी है ? तुम बातों के तीर मारो, तुम्हें क्या मालूम, मेरे दिल पर क्या बीत रही है—तुम क्या जानो, मैं रात-भर किस तरह जागती रही हूँ ?

दीपक—मगर इसमें मेरा क्या दोष है ? मुझे बताओ, मैं क्या कर सकता हूँ ?

रूप०—कदाचित् तुम्हें मालूम होता, कि मुझे किस तरह विवश किया जा रहा है ?

दीपक—किस बात के लिए विवश किया जा रहा ?

रूप०—(ज़मीन की तरफ़ देखते हुए) अब क्या बताऊँ ?

दीपक—(एकाएक चौंककर) शायद मिस्टर भंडारी......मैं भी कैसा मूर्ख हूँ ?

[दीपक धीरे-धीरे जाकर एक पेड़ से पीठ लगाकर खड़ा हो जाता है और अपने आप बोलता जाता है। मगर उसका मतलब यह है कि रूपकुमारी सुने।]

—किसी समय स्त्री का संसार प्रेम का संसार था। मगर आजकल पढ़ी लिखी स्त्रियों के संसार में साड़ियाँ और मोटरें हैं, बंगले और बहारें हैं, शान और शोभा है, मगर प्रेम और बलिदान नहीं है, पहले की स्त्री कुछ नहीं चाहती थी, प्रेम चाहती थी, आज की स्त्री सब कुछ चाहती है, प्रेम नहीं चाहती।

रूप०—(आगे बढ़कर) क्या तुम मेरी बात पर विश्वास करोगे ?

दीपक—(गम्भीरता से) कहो।

रूप०—तुम पुरुष दुनिया भर की पुस्तकें पढ़ सकते हो, मगर नारी-हृदय नहीं पढ़ सकते।

दीपक—मगर चिट्ठियाँ तो पढ़ सकते हैं।

रूप०—यह चिट्ठी मैंने अपने आप, अपनी मरज़ी से नहीं लिखी थी। मुझसे लिखाई गई थी।

दीपक—(खुश होकर) तो यह तुमने नहीं लिखी थी ? रूप! यह तुमने आप नहीं लिखी थी!

रूप०—(एक ही समय में हँसते और रोते हुए) नहीं!

दीपक—तो मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हें ग़लत समझा था,

मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। मगर एक बात और बता दो। तुमसे यह चिट्ठी क्यों लिखाई गई ? तुम्हारी माँ को मुझ से क्या शिकायत है ?

रूप०—बता दूँगी। मगर आज नहीं, फिर किसी दिन। आज मेरे मन से बोझ उतरा है, मैं तुम्हारे मन पर बोझ नहीं डालना चाहती।

[दीपक उसे उस पेड़ के तने पर बिठा देता है, जहाँ उसे पहले रूपकुमारी ने बिठाया था, और आप उसके सामने बैठ जाता है।]

दीपक—अगर तुम्हारे मन से बोझ उतर गया है, तो मेरे मन से भी बोझ उतारो।

रूप०—आज नहीं—कल !

दीपक—(आग्रह से) कल नहीं आज। आज नहीं इसी समय—बोलो।

रूप०—मैं कहती हूँ, मेरा आज का दिन ख़राब न करो।

दीपक—मैं भी यही कहता हूँ, कि मेरा आज का दिन ख़राब न करो।

रूप०—(संकोच से) अच्छा ! माँ जी कहती थीं, कि वह…

दीपक—वह क्या ?

रूप०—(रुक रुककर) वह…कहती…थीं, कि तुम…

दीपक—हाँ हाँ बोलो…

रूप०—वह कहती थीं, कि तुम...(फिर रुक जाती है।)

दीपक—यह कि मैं सूरदास की संतान हूँ। रूप! संसार चाहे जो कुछ कहे, मगर मैं सच कहता हूँ, कि सूरदास जैसा नेक, सच्चा, खरा, प्यार करने वाला बाप बहुत कम लोगों को मिला होगा। मुझे सूरदास का बेटा होने पर गर्व है।

रूप०—मगर वह कहती हैं, वे तुम्हारे पिता नहीं हैं।

दीपक—(चौंककर) क्या? वे मेरे पिता नहीं हैं? मैं उनका पुत्र नही हूँ?

रूप०—मगर मेरा मन कहता है, कि यह झूठ है।

दीपक—क्या यह हो सकता है, कि जिस आदमी को मैं आज तक अपना पिता जानता, मानता, समझता रहा हूँ, वह मेरा पिता न हो? तो फिर मैं किसका पुत्र हूँ? क्या इस संसार में यह भी संभव है?

रूप०—मैं कहती हूँ—तुम उन्हीं के पुत्र हो।

दीपक—(सुना अनसुना करके) मगर दुनिया ने इससे भी अद्भुत बातें देखी हैं। यह असम्भव नहीं, कि वह मेरे पिता न हों। तो ऐसी अवस्था में....

रूप०—मेरा ख्याल है, मेरी माँ को किसी ने धोखा दिया है।

दीपक—(चिन्ता को दूर हटाकर निश्चयात्मक रूप से) सुनो रूप! (रूप दत्तचित्त हो जाती है।) मैं जानता हूँ, कि यह मेरे किसी दुश्मन की शरारत है। मगर फिर भी जब किसी ने तुम्हारे और तुम्हारी माँ के मन में यह संदेह बिठा दिया है, तो इसे दूर करना

मेरा कर्तव्य है। और इसे दूर करने की एक ही विधि है—मैं अपने बाप से जाकर पूछूँ, कि तुम ही मेरे बाप हो न ?

[दीपक उठकर खड़ा हो जाता है।]

रूप०—मगर मुझसे प्रतिज्ञा करो। (उठ खड़ी होती है।)

दीपक—(मुस्कराकर) बहुत अच्छा ! लो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि अगर मैं उनका पुत्र न निकला, तो मैं इस गंगा में डूबकर आत्म-हत्या न करूँगा, स्वयं तुम्हारे पास आकर तुम्हें सब कुछ अपने मुँह से बता दूँगा। मगर सवाल यह है, कि मैं तुम्हें कहाँ....

रूप०—(मतलब समझकर) मैं अपने मकान के साथ वाले बाग़ीचे में हूँगी।

[दोनों चलते हैं।]

रूप०—मेरी एक प्रार्थना है। मेरा पत्र मुझे लौटा दो।

दीपक—(जेब में हाथ डालकर) तुम्हारा पत्र तुम्हें लौटाया जा सकता है। (पत्र दे देता है।) मगर क्या करोगी ?

रूप०—(पत्र फाड़कर फेंक देती है।) कुछ नहीं।

दीपक—अफ़सोस हमारे पहले प्रेम-पत्र का यह परिणाम !

रूप०—प्रेम-पत्र का यह परिणाम न होता, तो यह परिणाम हमारे प्रेम का होता। अब काग़ज़ फटा है, जब दिल फटते।

दीपक—तुम्हें भय था, कि मैं यह पत्र किसी को दिखा न दूँ।

रूप०—तुम्हें भय रहता, कि यह पत्र कोई देख न ले।

[दोनों चले जाते हैं। वृक्षों के पीछे से दो जासूस निकलते हैं।]

एक—अब तो तुमने लड़की के मुँह से भी सुन लिया। अब बोलो।

दूसरा--भई! मान लिया तुम्हारा ख्याल ठीक है। मगर यह रायबहादुर हीरालाल का बेटा है, इसका क्या प्रमाण है?

पहला—इसका प्रमाण भी मिल जाएगा। यह कागज़ के टुकड़े उठा लो।

दूसरा--क्या करोगे?

पहला—शायद किसी काम आएँ।

[प्रस्थान]

आठवाँ दृश्य

स्थान--सूरदास के घर के पास बाज़ार

समय--संध्या-काल

[सूरदास और भंडारी साहब]

भंडारी--सूरदास ! आज तुमने बहुत रुपया दान किया ।

सूरदास—नहीं भाई ! बहुत दान तो नहीं किया । और मैं ग़रीब आदमी, बहुत दान कर भी क्या सकता हूँ ? मुझे भगवान् ने खुशी दी है, मैंने सोचा, चलो मैं भी थोड़ी सी खुशी चार आदमियों में बाँट दूँ । तुम नहीं जानते आज मैं कितना खुश हूँ । आज मेरी खुशी मेरे मन में नहीं समाती । आज मेरे दीपक ने मेरा सिर ऊँचा कर दिया है ।

भंडारी—इसमें क्या शक है ! मेरा मतलब है, तुम्हारा दीपक बड़ा होनहार है ।

सूरदास—मगर अभी बड़ी परीक्षाएँ तो आगे आने वाली हैं । चार दिन के बाद उसका ब्याह होगा, अगर उस समय वह नेक पति बने, तो मैं समझूँगा, वह परीक्षा में पास हुआ । चार साल के बाद उसके यहाँ सन्तान होगी, अगर उस समय वह सहनशील पिता बने,

तो जानूँगा, कि मेरा परिश्रम सफल हुआ। जीवन के क्षेत्र में पग-पग पर पाप के प्रलोभन सुन्दर रूप धारण करके उसके सामने आएँगे, अगर उस समय वह उनको पाँव-तले मसल सके, तो मैं कहूँगा, कि वह वीरात्मा है, और जीवन परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ है।

[जासूस आकर एक तरफ छुप जाते हैं।]

भंडारी--सूरदास! मैं समझता था, तुम सिर्फ़ रागी और अभिनेता हो, मगर आज पता लगा, कि तुम तत्त्ववेत्ता भी हो। जब मैं इंगलैंड में था, तो मैंने वहाँ भी एक तुम जैसा आदमी देखा था। मगर उसके बेटे ने तो बाप से बुरा बर्ताव किया था।

सूरदास—मगर भाई! मेरा दीपक तो ऐसा लड़का नहीं।

भंडारी--तुम्हारा दीपक तो हीरा है, सूरदास! हीरा!

एक जासूस—(दूसरे से—धीरे से) सुना हीरालाल का नाम ले रहा है।

दूसरा—चुप!

[कई आदमियों का एक साथ प्रवेश।]

दो आदमी--सूरदास बधाई हो भई!

सूरदास--तुम्हें भी बधाई हो भाई! दीपक जितना मेरा बेटा है उतना ही तुम्हारा भी है।

[जासूस एक दूसरे की तरफ़ अर्थ-पूर्ण-दृष्टि से देखते है।]

तीसरा—हम तो सुनकर निहाल हो गए, सूरदास!

सूरदास—तुम निहाल न होगे, तो और कौन होगा? यह सब तुम्हारे ही पाँवों की बरकत है।

चौथा—सूरदास जी! हम जलसा माँगने आए है।

पहला—बोलो, कब दोगे?

दूसरा—टालने से काम न चलेगा। इतना पहले समझ लो।

सूरदास—नहीं भैया! टालने की कौन सी बात है? जब चाहो, लेलो। भगवान् ने ऐसा अवसर दिया है, तो क्या मैं पीछे हट जाऊँगा।

भंडारी—हमें भी याद रखना सूरदास जी! कहीं भूल न जाना।

सूरदास—नहीं भैया! तुम्हें कैसे भूल जाऊँगा? मगर एक बात है, मैं अन्धा आदमी! मुझसे तो यह प्रबंध नहीं हो सकेगा। रुपया मुझ से लो, प्रबंध आप करो।

भंडारी—मंजूर! प्रबंध मैं करूँगा।

पहला—तो कब? आज या कल?

सूरदास—भाई आज तो कठिन है। अभी दीपक घर नहीं आया। कहीं यार-दोस्तों ने घेर लिया होगा। आता है, तो उसके साथ सलाह करके आपको सूचना दे दूँगा। उसके दोस्तों और कालेज के प्रोफ़ेसरों को भी बुलाना होगा। और मेरी कंपनी के आदमी भी तो आएँगे।

तीसरा—ठीक है, आज नहीं हो सकता। कल या परसों

पर रखो।

सूरदास—अच्छा भाई! (हाथ बाँधकर) आप लोगों ने बड़ी कृपा की। आप का धन्यवाद!

भंडारी—हाँ सूरदास जी! तुम चलो। आज तुम्हारा बधाइयाँ बटोरने का दिन है। मगर दीपक से मुलाकात न हुई।

सूरदास—(जाते जाते) कल हो जाएगी।

[सूरदास चला जाता है। भंडारी उसकी तरफ़ देखता रहता है।]

भंडारी—(मुड़कर) खूब आदमी है, आपने देखा, आज कितना खुश है?

पहला—बेटे पर तो प्राण देता है।

भंडारी—एक दूसरे अंधे हैं, जो माँग माँगकर खाते हैं, और समाज पर धिक्कार बने हुए हैं। एक यह अंधा है, जो जीवनक्षेत्र में सूरमा सिपाही के समान वीरता से लड़ रहा है और अपने बेटे को पालने के लिए वृद्धावस्था में भी इतना काम कर रहा है। अपने कर्तव्य का जितना इसे ध्यान है, उतना ध्यान अगर सभी को हो, तो संसार स्वर्ग-धाम बन जाए।

[सब का प्रस्थान]

नवाँ दृश्य

स्थान—सूरदास का घर

समय—रात

[सूरदास साड़ियों के ढेर के पास एक आराम कुरसी पर बैठा साड़ियों को टटोल टटोल कर देख रहा है, और अपना पुराना गीत गा रहा है।]

गीत

तेरी गठड़ी में लागा चोर मुसाफिर जाग ज़रा, जाग ज़रा।
नींद में माल गँवा बैठेगा,
अपना आप लुटा बैठेगा,
फिर पीछे कुछ नहीं बनेगा, लाख मचावे शोर।
मुसाफिर जाग ज़रा, जाग ज़रा।

[कल्लो की माँ का प्रवेश।]

कल्लो की माँ—यह आप आज इतना पुराना गीत क्या ले बैठे हैं ?

सूरदास—कल्लो की माँ ! आज मुझे बीस साल पहले का वह दिन याद आ रहा है, जब मुझे दीपक घाट पर पड़ा मिला था।

उस दिन मैं यही गीत गा रहा था। मानों इसी गीत ने मुझे दीपक दिया था। आज दीपक ने बी० ए० की परीक्षा पास की है, आज मैंने दीपक के ब्याह की तैयारियाँ शुरू की हैं, आज मेरे मन ने कहा—वही गीत गाओ।

कल्लो की माँ—यह गीत न गाइए। इसे सुनकर मेरे मन में हौल उठने लगता है।

सूरदास— मैं सोचता हूँ, अगर उस दिन इसे मैं न उठा लाता, तो मेरा जीवन कितना उदास, कितना फीका, कितना रस-रहित होता। मैं आज तक उसी घाट पर बैठकर दिन को भिक्षा माँगता, रात को उसी झोंपड़े में जाकर सो रहता। आज मैं पाँच सौ रुपया वेतन पाता हूँ, आज मैं गृहस्थी हूँ। आज मेरा जीवन कितना आशापूर्ण, कितना आनन्दमय है। यह सब दीपक के कारण है।

कल्लो की०—और मैं सोचती हूँ, अगर उस दिन उसे आप न उठा लाते, तो उसका क्या हाल होता ? आपने उसे बचा लिया।

सूरदास—नहीं कल्लो की माँ ! आदमी कुछ नहीं कर सकता, जो कुछ करता है परमात्मा करता है।

[सूरदास साड़ियों पर हाथ फेरने लगता है। दीपक आकर एक कोने में छिप जाता है।]

सूरदास—कल्लो की माँ ! तुम क्या सोच रही हो ?

कल्लो की०—मैं यह सोच रही हूँ, कि अब जब दीपक के

ब्याह की बात-चीत शुरू होने वाली है, तो उसके माँ बाप का सवाल उठना ज़रूरी है।

[दीपक चौकन्ना हो जाता है]

सूरदास—क्या मतलब ?

कल्लो की०—क्या आप कह सकेंगे, कि दीपक मेरा बेटा है ?

सूरदास—मैं साफ़ कह दूँगा, कि मुझे घाट पर पड़ा मिला था !

[दीपक के मुँह का रंग उड़ जाता है।]

कल्लो की०—तो यह सम्बन्ध हो चुका !

सूरदास—क्यों कल्लो की माँ ! इसमें क्या हर्ज है ?

कल्लो की०—बहुत हर्ज है। माँ-बाप, जात-पात, घर-बार के पते बिना कौन अपनी बेटी ब्याह देगा ? ज़रा सोचिए !

[दीवार-घड़ी साढ़े आठ बजाती है।]

कल्लो की माँ—लो बातों ही बातों में थियेटर जाने का समय हो गया। खाना ले आऊँ ?

सूरदास—(गहरे विचार में डूबे हुए) ले आओ।

[कल्लो की माँ खाना लेने जाती है। दीपक धीरे-धीरे सूरदास के पास आकर खड़ा हो जाता है।]

दीपक—दादा !

सूरदास—कौन ? दीपक ! तुम इस समय तक कहाँ थे, क्या तुम्हें मालूम है, तुम बी० ए० में सारे प्रान्त में सर्व-प्रथम रहे हो।

आओ, मेरे निकट आओ। आओ, यहाँ बैठ जाओ। बेटा! आज मैं बड़ा खुश हूँ।

दीपक—(उदासी से) दादा!

सूरदास—पहले मेरे पास आकर मेरी एक बात सुन लो।

दीपक—पहले मेरी बात!

सूरदास—(एक साढ़ी उठाकर) देखो! यह क्या है?

दीपक—मैं आप से एक बात पूछना चाहता हूँ।

सूरदास—(साढ़ी रखकर) अच्छा पूछो—

दीपक—मैं पूछता हूँ, क्या मैं आप ही का बेटा हूँ?

सूरदास—(चौंककर) बेटा! यह तुम आज मुझ से क्या पूछ रहे हो? क्या तुम्हें कुछ संदेह है?

दीपक—हाँ, मुझे संदेह है। इसी लिए पूछता हूँ, क्या मैं आप ही का बेटा हूँ.....

सूरदास—(भरी हुई आवाज़ में) यह तो सारी दुनिया जानती है।

दीपक—और आप ही मेरे पिता हैं?

सूरदास—यह तुम भी जानते हो।

दीपक—मगर यह झूठ है।

सूरदास—(हताश होकर) दीपक!

दीपक—आप सच क्यों नहीं कहते?

सूरदास—(हाथ फैलाकर) दीपक! आज तुम्हें क्या हो गया है?

दीपक—अभी अभी आप कल्लो की माँ से बातें कर रहे थे, वह मैंने सुन ली हैं।

[सूरदास निरुत्तर होकर थोड़ी देर के लिए चुप रह जाता है। इस के बाद ठंडी साँस भरता है, और एक पग आगे बढ़ता है।]

सूरदास—तो तुमने सब कुछ सुन लिया है-अच्छा पूछो। अब मैं तुम्हारे हर एक प्रश्न का उत्तर देने को तैयार हूँ। मगर बेटा! सच देखने के लिए पत्थर की आँखों की और सच सुनते के लिए लोहे के दिल की ज़रूरत है। क्या तुम सच सुन सकोगे?

दीपक—आज मैं सब कुछ सुन सकूँगा।

सूरदास—तो पूछो, क्या पूछते हो?

दीपक—मैं कौन हूँ?

सूरदास—भगवान् साक्षी है, मैं कुछ नहीं जानता।

दीपक—और मेरे माता-पिता कौन हैं?

सूरदास—मैं यह भीं नहीं जानता।

दीपक—और मेरी ज़ात।

सूरदास—(सिर झुकाकर) मैं यह भी नहीं जानता।

दीपक—(ज़रा क्रोध से) तो यह बात आपने इतने साल तक मुझ से क्यों छिपाए रखी? आप तो कहा करते थे, कि तेरी माँ ऐसी थी, और वैसी थी!

सूरदास—(दीपक की बात का उत्तर न देकर) बीस साल गुज़रे,

एक दिन साँझ के समय गंगा के घाट पर एक बच्चा पड़ा था। उसे एक अंधे के प्यार ने उठाया, पढ़ाया और बड़ा किया। आज वह बच्चा दीपक है, आज वह अंधा सूरदास है।

दीपक—(भर्राई हुई आवाज़ में) तो मैं अनाथ हूँ ?

सूरदास—(व्याकुल होकर)नहीं मेरे बच्चे ! तू अनाथ नहीं है। तू अपने आप को अनाथ क्यों कहता है ? अभी तेरा अंधा बाप जीता है। (हाथ फैलाकर आगे बढ़ता है।) दीपक !

दीपक—(हवा में देखते हुए) एक घंटा पहले तक मैं भी यही समझता था, मगर अब—मेरा कोई बाप नहीं है, मेरी कोई माँ नहीं है, मेरी कोई जाति नहीं है। मैं संसार की भीड़ में अकेला और पराया हूँ।

सूरदास—(टूटे हुए साहस से) दीपक !

दीपक—भगवान् जाने ! मेरे माता-पिता ने मुझे घाट पर क्यों फेंक दिया ? शायद उनके पास मेरे पालने के लिए धन न था। शायद उनके पास मुझे अपनी संतान कहने का साहस न था—शायद मैं पाप की संतान हूँ।

सूरदास—(रुँधे हुए गले से) दीपक ! तू ऐसी हृदय-वेधक बातें क्यों सोचता है ? तू मेरा बच्चा है। तू इस अंधे बाप के बुढ़ापे की लाठी है।

दीपक—(सूरदास के चरण छूकर) दादा !

सूरदास—(दीपक को पकड़ना चाहता है, मगर दीपक परे हट जाता है।) **दीपक !**

दीपक—भगवान् से प्रार्थना कीजिए, कि मुझे मेरा बाप मिल जाए !

[दीपक तेज़ी से बाहर निकल जाता है।]

सूरदास—(हाथ फैलाकर आगे बढ़ते हुए) **दीपक ! क्या तू जा रहा है ! दीपक ! इधर आ। मैं तेरा अंधा बाप कहता हूँ, मेरे पास आ। दीपक, अरे नादान, तू अपने बाप के प्यार को ठुकराकर बाप को ढूँढने कहाँ जा रहा है ? दीपक !** (ज़ोर से) **दीपक ज़रा ठहर**— (जाकर अपने सन्दूक से कवच निकालता है।) **यह देख ! जिस दिन तू मुझे मिला था, उस दिन तेरे गले में यह कवच पड़ा था। शायद इससे तुझे कुछ पता लग सके। ले देख ! तू बोलता क्यों नहीं ? क्या तू चला गया ?** (कवच मेज़ पर रख देता है।) **दीपक !!** (ज़ोर से) **दीपक !!** (और भी ज़ोर से) **दीपक !!!**

[जल्दी जल्दी आगे बढ़ता है, और कुरसी से टकराकर गिर पड़ता है। कल्लो की माँ खाना लेकर आती है, और घबरा जाती है। वह खाना मेज़ पर रख देती है, और सूरदास को संभालती है। सूरदास कराहता है।]

कल्लो की माँ—कितनी बार कहूँ, कि ज़रा धीरे चला कीजिए अब गिर पड़े न !

सूरदास—(रोते हुए) कल्लो की माँ! मैं गिरा नहीं हूँ। दीपक मुझसे गुस्से होकर चला गया है।

कल्लो०—आपने कुछ कह दिया होगा (कुरसी पर बिठा देती है।)

सूरदास—मैंने कुछ नहीं कहा। वह कहता है मैं अपने बाप को ढूँढूँगा।

कल्लो०—(आश्चर्य से) तो क्या आपने उससे सब कुछ कह दिया ?

सूरदास०—मैंने कुछ नहीं कहा। जब हम बातें कर रहे थे, वह छुपकर सब कुछ सुन रहा था। जब तू खाना लेने गई, वह मेरे पास आया, और मुझे सब कुछ बताना पड़ा। मगर कल्लो की माँ! तू ही बता! मेरा इसमें क्या दोष है ? और तू ही बता, अब मैं क्या करूँ ?

कल्लो०—करना क्या है ? चुप करके बैठे रहिए। जब उसके सिर से क्रोध का भूत उतर जाएगा, तो अपने आप घर आ जाएगा।

सूरदास—नहीं कल्लो की माँ! मेरा मन कहता है, कि वह नहीं आएगा।

कल्लो०—तो जाएगा कहाँ ? उसे बाप का जो प्यार यहाँ मिल सकता है, वह संसार में और कहीं नहीं मिल सकता।

सूरदास—कल्लो की माँ! संसार में लोग स्त्री को चाहते हैं,

बाल-बच्चों को चाहते हैं, खेल-तमाशे को चाहते हैं। मगर बुड्ढे बाप के प्यार को कोई नहीं चाहता।

[बाहर मोटर के हार्न की आवाज़]

—कौन है, कल्लो की माँ ?

कल्लो०—कंपनी की गाड़ी आई है !

सूरदास—कंपनी की गाड़ी लौटा दो, आज मैं नहीं जा सकता।

कल्लो०—क्यों नहीं जा सकते ?

सूरदास—अब मुझे नौकरी की क्या ज़रूरत है ? मेरा दीपक चला गया है।

कल्लो०--(ज़रा क्रोध से) अरे बाबा ! दीपक कहीं नहीं गया, और कहीं नहीं जा सकता। घंटे दो घंटे में लौट आएगा। आप थिएटर जाएँ।

सूरदास--(आशापूर्ण-स्वर में) तुम कहती हो, लौट आएगा। (सोचकर) तुम ठीक कहती हो, वह ज़रूर आएगा। वह जानता है, कि अगर मैं न लौट गया तो सूरदास रो रोकर मर जाएगा। और वह यह भी जानता है, कि आज सूरदास का खुशी का दिन है, आज उसके रोने का दिन नहीं है। वह इतना निठुर नहीं है। वह मेरी खुशी को ख़राब नहीं करेगा।

[एक पड़ोसी का प्रवेश।]

पड़ोसी—सूरदास जी ! बधाई हो।

सूरदास—काहे की बधाई भाई ?

पड़ोसी—वाह! दीपक के पास होने की।

सूरदास—(टूटे हुए दिल से) तुम्हें भी बधाई हो भाई! मगर···

पड़ोसी—(घबराकर) क्यों सूरदास!

सूरदास—(अपने आपको संभालकर) कुछ नहीं। तो कल्लो की माँ, अब मैं थियेटर चलूँ, बहुत देर हो गई है।

[प्रस्थान]

[पड़ोसी कुछ देर खड़ा सोचता रहता है, इसके बाद धीरे धीरे चला जाता है।]

कल्लो०—भगवान्! तू किसी को संतान देता है, किसी को नहीं देता। मगर जिनको संतान नहीं देता, उनको संतान का इतना मोह क्यों दे देता है। और अगर मोह भी दे देता है, तो फिर उनसे संतान जुदा क्यों करता है?

[रायबहादुर हीरालाल, शामलाल और जासूसों का प्रवेश।]

हीरालाल—क्या सूरदास जी घर पर ही हैं? हमें उनसे मिलना है।

कल्लो०—वह तो थियेटर चले गए। रात को दो बजे लौटेंगे।

एक जासूस—और उनका बेटा दीपक?

कल्लो०—वह भी कहीं बाहर गया है!

शाम०—कब तक लौटेगा?

कल्लो०—बताकर नहीं गया। (कवच उठाना चाहती है।)

दूसरा जासूस— यह क्या है ?

[जासूस कवच लेकर शामलाल को देता है ।]

शाम०—(जोश से) देखिए भाई साहब ! दलीप का कवच !

हीरा०—(कल्लो की माँ से) यह कवच यहाँ कैसे आया ?

कल्लो०—(डरकर) जब दीपक छोटा था, तो यह कवच उसके गले में पड़ा था ।

[हीरालाल कवच को हाथ में लेकर खुशी से इधर उधर टहलता है । शामलाल दीपक के बचपन का फ़ोटो देखकर चिल्ला उठता है ।]

शाम०—यह देखिए दलीप की तसवीर !

हीरा०—(तसवीर के पास जाकर) भगवान् ! आखिर बीस साल के बाद तूने बाप के हृदय की पुकार सुन ली ।

[कल्लो की माँ हैरान होती है ।]

हीरा०—मगर वह इस समय कहाँ है ?

कल्लो०—अपने बाप को ढूँढ़ने गया है । भगवान् जाने, यहाँ लौटकर आता भी है या नहीं ।

शाम०—(जासूसों से) क्या तुम्हें मालूम है, वह कहाँ जा सकता है ?

एक जासूस—जी हाँ ! हमें मालूम है, आइए !

शाम०—(दीपक की जवानी का फ़ोटो देखकर) और यह किसकी तस्वीर है ?

कल्लो०—(डरकर) दीपक की! मगर........मगर आप यह सब कुछ क्यों पूछ रहे हैं?

एक जासूस—(एक एक शब्द पर ज़ोर देकर) दीपक इनका बेटा है!

कल्लो०—(और भी सहमकर) और यह कौन हैं?

दूसरा जासूस—यह बाद में कहूँगा। तुम एक बात बताओ। दीपक इस समय कहाँ होगा?

कल्लो०—आज उसे पहली बार मालूम हुआ है, कि वह सूरदास का बेटा नहीं है। इसलिए वह सूरदास से ख़फ़ा हुआ, कि तुमने यह सब कुछ मुझसे क्यों छुपाए रखा। मगर इसमें सूरदास का ज़रा भी दोष नहीं है।

[हीरालाल, शामलाल और जासूस सब चले जाते हैं। कल्लो की माँ हताश होकर एक कुरसी पर बैठ जाती है।]

कल्लो०—भगवान्! आज तू यह क्या लीला दिखा रहा है? आज सूरदास कहता था, यह मेरे जीवन में सुख का सबसे बड़ा दिन है। क्या यही दिन उसके जीवन में दुख का सब से बड़ा दिन बन जाएगा? बीस साल तक दीपक का बाप नहीं आया, आज एक आदमी आता है और कहता है, मैं उसका बाप हूँ। तो क्या दीपक चला जाएगा? क्या आज सूरदास का संसार सूना रह जाएगा? थोड़ी देर पहले वह कितनी खुशी से ग़रीबों को रुपये बाँट रहा था,

और समझता था, आज मैं भी भाग्यवान हूँ। और इस समय वह अपनी मरी हुई आशा की तरफ़ देख रहा है और सोच रहा है क्या यह फिर से जी सकती है। भगवान्! अभी तो उसको दिए हुए ग़रीबों के आशीर्वाद हवा में उसी तरह गूंज रहे हैं! अभी तो शहर के लोग उसे मुबारक़बाद देने आ रहे हैं।

[पर्दा गिरता है।]

दसवाँ दृश्य

स्थान—रूपकुमारी का बग़ीचा

समय—रात

[दीपक और रूपकुमारी]

रूपकुमारी—उन्होंने क्या कहा ?

दीपक—(ठंडी आह भरकर) यह कि इस नीले-आकाश तले कोई बात भी असम्भव नहीं है !

रूप०—तो मेरी माँ का विचार ठीक निकला ?

दीपक—(हवा में देखते हुए) मैं कौन हूँ ? किसका बेटा हूँ ? मेरी जाति क्या है ? संसार के इन साधारण प्रश्नों का भी मेरे पास कोई उत्तर नहीं है ।

रूप०—मगर तुम, तुम तो हो ?

दीपक—शायद अब मैं..........मैं भी न रहूँ !

रूप०—(भर्राई हुई आवाज़ में) दीपक !

दीपक—मेरे मिलने-जुलने वालों में कई ऐसे हैं, जिनके माँ-बाप अमीर हैं । कई ऐसे हैं, जिनके माँ-बाप ग़रीब हैं । कुछ ऐसे अभागे भी हैं, जिनके माँ-बाप मर चुके हैं । मैं उनसे भी अभागा

हूँ। उनके पास अपने माँ-बाप का नाम और स्मृति तो है, मेरे पास वह भी नहीं, मैं संसार में सबसे अभागा हूँ।

रूप०—मैं कहती हूँ, तुम्हें क्या हो गया है?

दीपक—मैं भी यही कहता हूँ, कि मुझे क्या हो गया है? कल साँझ तक मेरे पास सुख के सारे साधन थे, आज मेरे पास कुछ भी नहीं, यहाँ तक कि धीरज की लाठी और आशा का दिया भी नहीं है। (एकाएक रूप की तरफ़ मुड़कर) रूप!

रूप०—चलो! मैं तुम्हारे बाप से मिलना चाहती हूँ।

दीपक—मेरा कोई बाप नहीं है।

रूप०—वह तुम्हारे लिए बाप से भी बढ़कर हैं। (कंधे से पकड़कर) चलो।

दीपक—(अपना आपको छुड़ाकर) मेरी मानो तो, अब तुम्हें मुझको भूल जाना चाहिए!

रूप०—और तुम समझते हो, यह सम्भव है?

दीपक—(रुखाई से) यह सोचना मेरा काम नहीं। मैं अपने विषय में सोचता हूँ, तुम अपने विषय में सोचो।

रूप०—(टूटे हुए हृदय से) चलो, मेरी बात छोड़ो। मगर इतना तो बता दो, कि तुम्हारा क्या इरादा है?

दीपक—मैं अपने मन का संतोष ढूँढूँगा। अगर मिल गया, तो शायद तुमसे फिर कभी भेंट हो जाए, नहीं तो........

[दीपक तेज़ी से मुड़ता है, और चला जाता है। रूपकुमारी वहीं बैठी रह जाती है, जैसे उसमें हिलने-जुलने की भी शक्ति नहीं है। इतने में यशोदा घबराई हुई आती है।]

यशोदा—(घबराकर) क्या यहाँ दीपक आया था ?

रूप०—(बिना सिर उठाए, उदासी से) आया था, मगर चला गया !

यशोदा—(और भी घबराकर) कहाँ चला गया ? उसका बाप आया है।

रूप०—(उसी तरह सिर झुकाए हुए) सूरदास उसका बाप नहीं है।

यशोदा—(जल्दी-जल्दी) रूप ! तुम नहीं जानतीं, यह दीपक रायबहादुर हीरालाल का बेटा है।

[हीरालाल, शामलाल और जासूसों का प्रवेश।]

हीरा०—क्या यहाँ भी नहीं है ?

जासूस—अभी तो यहीं था।

यशोदा—(रायबहादुर से) ज़रा ठहरिए ? (रूप से) बेटी, बता, वह कहाँ गया है ?

रूप०—मेरे पीछे पीछे चले आइए !

[सबका तेज़ी से प्रस्थान।]

———

ग्यारहवाँ दृश्य

स्थान—कालीदास नाटक कम्पनी

समय—रात

[बाटलीवाला और जयकृष्ण का प्रवेश। बाटलीवाला क्रोध में है, जयकृष्ण उसे समझाने की चेष्टा कर रहा है।]

बाटलीवाला—जाना चाहे तो आज चला जाए, मगर मैं अपना अपमान नहीं सह सकता। इज़्ज़त पहले रुपया पीछे।

जयकृष्ण—आपका अपमान कौन कर सकता है? और फिर सूरदास तो ऐसा आदमी ही नहीं है।

बाटली०—(बिगड़कर) तो क्या मुझे ही पागल कुत्ते ने काटा है?

जय०—(और भी विनीत भाव से) मालूम होता है, उसके बेटे ने घर में कुछ कह दिया होगा।

बाटली०—तो फिर जाकर बेटे से लड़े; मुझसे क्यों लड़ता है? सिर्फ़ इतना कहा, कि सूरदास! आज बड़ी देर कर दी। बस इसी बात पर बिगड़ बैठा, और ज़ोर ज़ोर से बोलने लगा। बताओ, इस में मेरी क्या भूल थी?

जय०—भूल तो उसी की थी।

बाटली०—वह दिन भूल गया, जब घाट पर बैठकर पैसा पैसा माँगा करता था। आज मेरी कृपा से चार पैसे जमा हो गए, तो मुझी से अकड़ने चला है। यह भी नहीं सोचता, कि उसे जो कुछ बनाया है, मैंने बनाया है।

जय०—यह भी क्या कहने की बात है ? सारी दुनिया जानती है।

बाटली०——सचमुच इस दुनिया में जो आदमी किसी के साथ नेकी करता है, वह अपने पाँव पर आप कुल्हाड़ा मारता है। आज मैं जवाब दे दूँ, तो कल आटे-दाल का भाव मालूम हो जाए, दो दिन में आँखें खुल जाएँ जनाब की। इसे रोटियां लग गई हैं।

[सूरदास लाठी लिए आता है, और बाटलीवाला की बात सुन कर और भी बिगड़ उठता है।]

सूरदास—आखिर आप क्या चाहते हैं ? मैं काम करूँ, या चला जाऊँ ?

जय०—(सूरदास के पास जाकर) सूरदास जी ! आप जाकर अपना काम करें। आप इनकी बात न सुनें।

सूरदास—(क्रोध से) मेरे विचार में अब यह मुझ से तंग आ गए हैं। अगर यह बात है, तो मैं इसी समय जाने को तैयार हूँ। क्यों मैनेजर साहब !

[बाटलीवाला चुप रहता है ।]

सूरदास—(और भी ज़ोर से) मैनेजर साहब !

[बाटलीवाला अब के भी चुप रहता है ।]

सूरदास—(गरजकर) मैं कहता हूँ, अगर आप मुझे रखना नहीं चाहते, तो साफ़ साफ़ कह दीजिए, ताकि मैं इसी समय चला जाऊँ ।

जय०—सूरदास जी ! यह आप क्या कह रहे हैं ?

सूरदास—मैं कहता हूँ, मैं आज से काम नहीं करूँगा ।

जय०—(धीरे से) तो परिणाम क्या होगा ?

सूरदास—(व्यंग से) मुझे आटे-दाल का भाव मालूम हो जाएगा मेरी आँखें खुल जायेंगी ।

बाटली०—(सूरदास के हाथ में दियासलाई की डिबिया देकर) लो जाकर अपने हाथ से पहले कम्पनी को आग लगा दो ।

[बाटलीवाला तेज़ी से बाहर चला जाता है ।]

सूरदास—(विनय से) मैनेजर साहब ! मैं कम्पनी को क्या आग लगाऊँगा, मेरे तो अपने ही मन में आग लगी हुई है । आप नहीं जानते, आज मुझे क्या हो गया है ?......आप नहीं जानते, आज मैं क्यों इस तरह......

जय०—ज़रा जल्दी कीजिए, आपका काम शुरू होने में अब देर नहीं है ।

सूरदास—अच्छा भाई चलो ! मगर आज मेरे लिए गाना

बड़ा कठिन होगा। आज मेरा मन रो रहा है।

जय०—(जाते जाते) क्यों, सूरदास आज तुम्हें क्या हुआ ?

[जयकृष्ण सूरदास की बात नही समझता और उसे लेकर बाहर चला जाता है। दृश्य बदलता है।]

रंगमंच पर रंगमंच

[रंगमंच पर सावित्री-सत्यवान का नाटक खेला जा रहा है। इस समय वह दृश्य उपस्थित है, जब सत्यवान सावित्री को व्याह कर लाता है। सूरदास सत्यवान के अंधे बाप द्युमत्सेन की वाटिका में है, और बनवासियो के वेश मे माला लिए एक वृक्ष तले चबूतरे पर बैठा अपनी स्त्री से बेटे के ब्याह की बातें कर कर के खुश हो रहा है।]

सूरदास—सत्यवान की माँ ! तुमने बहू को पसन्द किया ?

सत्यवान की माँ—स्वामी ! बहू चन्द्रमा से सुन्दर, धरती से विनम्र और गंगा-यमुना आदि के स्रोत से भी पवित्र है !

सूरदास—और हमारा सत्यवान प्रसन्न है ?

सत्यवान की माँ--वह ऐसा प्रसन्न है जैसे उसे देवताओं ने वरदान दे दिया हो।

सूरदास—मगर सावित्री राजा की बेटी है। यहाँ आकर उदास तो न हो जायगी ? वह राजमहलों में पली है।

सत्यवान की माँ—स्वामी ! उसने वह राजमहल अपनी खुशी

से छोड़े हैं। (एक ओर देखकर) लो, वह दोनों आपको प्रणाम करने आ रहे है ?

सूरदास--भगवान्! आज मेरे मन की खुशी की सीमा नहीं, आज मेरा पुत्र बहू ब्याह कर लाया है, आज मेरी पर्ण-कुटी में राज-लक्ष्मी आई है। क्या तू आज एक क्षण के लिए मेरी अंधी आँखों को देखने की शक्ति नहीं दे सकता। (रोकर) यह स्वर्गीय दृश्य दूसरों की आँखों से नहीं, अपनी आँखों से देखने की वस्तु है।

सत्यवान की माँ--क्या आप रो रहे हैं ?

सूरदास--(आँसू रोककर) नहीं सत्यवान की माँ! आज मेरे रोने का नहीं, हँसने मुसकराने, और खुश होने का दिन है।

[सावित्री और सत्यवान आकर द्युमत्सेन (सूरदास) के पाँव को धोते हैं।]

सूरदास--बेटी सावित्री! तेरा श्वसुर ग़रीब है, उसके पास तेरे देने को सिवाय आशीर्वाद के और कोई चीज़ नहीं।

सावित्री--पिता जी! मेरे लिए आपका आशीर्वाद ही सब कुछ है।

सूरदास--सत्यवान! तू धन्य है, जिसे ऐसी स्त्री मिली है। मैं चाहता हूँ, तू कभी इसका मन न दुखाए।

सत्यवान--आपकी इच्छा मेरे जीवन का नियम होगी, पिताजी!

सूरदास--जीते रहो बेटा, जीते रहो और सुखी रहो।

सत्यवान की माँ—बहू को भी आशीर्वाद दो।

सूरदास—जब तक आकाश की नीली छत में चाँद-सूरज के दीपक जलते हैं, तब तक तुम्हारा नाम जीता रहे। जितनी दूर हवा जाती है, वहाँ तक तुम्हारा यश फैले। जिस तरह सागर का पानी कभी कम नहीं होता, उसी तरह तुम्हारे मन की प्रीति, पवित्रता और प्रसन्नता कभी कम न हो।

सत्यवान की माँ—चलो बेटी! चलकर दूसरे महात्माओं को भी प्रणाम कर आओ।

[सत्यवान की माँ, सावित्री और सत्यवान सब चले जाते है। सूरदास उठकर खड़ा हो जाता है।

सूरदास—भगवान्! आज मेरे जीवन में दुःख का सबसे बड़ा दिन है।

जयकृष्णा—(एक ओर से) सुख का सबसे बड़ा दिन सूरदास! सुख का सबसे बड़ा दिन कहो। और मुँह पर खुशी लाओ।

[सूरदास अपने आप को संभालने का यत्न करता है, मगर फिर भूल कर जाता है।]

सूरदास—आज मेरी कुटिया में बहार आई है। आज मेरा बेटा मेरे प्यार को ठुकरा गया है।

जयकृष्णा—(एक ओर से दबी हुई आवाज में) सूरदास! क्या कह रहे हो? कहो, आज मेरा बेटा ब्याह करके आया है।

सूरदास—(घबराकर ऊँची आवाज़ में जल्दी जल्दी) **आज मेरा बेटा ब्याह करके आया है। आज मेरी खुशी के लिए मेरा घर और मेरा मन दोनों बहुत छोटे मालूम होते हैं, आज** ··(भूल जाता है।) **आज**···(याद करने का यत्न करता है।) **आज**···(घबरा जाता है।) **आज····आज···आज···।**

जय०—(घबराकर दबी हुई आवाज़ में) **सूरदास ! जो कुछ भूल गया है, उसे छोड़ दो, और गाना शुरू कर दो।**

सूरदास—अच्छा !

[बाजा बजने लगता है। सूरदास गाना शुरू करता है मगर बाजे से पीछे रह जाता है, इसलिए रुक जाता है। फिर गाना चाहता है, फिर पीछे रह जाता है। आखिर तीसरी बार बाजे के साथ साथ गाने लगता है। जयकृष्ण शान्ति की साँस लेता है।]

गीत

जीवन का सुख आज मोहे प्रभु !
जीवन का सुख आज।
जलथल नाचे जंगल नाचे,
नाचे बन का मोरा।
झूम झूम फूलन पर नाचे,
रस का लोभी भौंरा।
प्रभु जीवन का सुख आज।

[गीत के अन्त में सूरदास अपने आपे में नहीं रहता। गाते गाते

उसका स्वर ऊँचा होता जाता है। इतना ऊँचा, इतना ऊँचा, कि उस का गला फट जाता है। मगर वह फिर भी उसी तरह, उसी जोश से उसी ज़ोर से गाता रहता है। यहाँ तक कि उसकी सारी देह काँपने लगती है, मगर फिर भी गाता रहता है। दर्शक चकित होकर देखते हैं। मंच के एक ओर से बाटलीवाला और जयकृष्ण स्थिति को समझने का भरसक यत्न करते हैं, मगर कुछ नहीं समझते और सूरदास अपने शरीर और आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियों के साथ गाता रहता है। यहाँ तक कि उसके गले की आवाज़ के साथ ही उसके मन और शरीर का बल भी जवाब दे देता है, और वह रँग-मंच पर गिरकर बेसुध हो जाता है। यह देखकर दर्शकों में शोर मच जाता है। बाटलीवाला और जयकृष्ण कूदकर रंग-मंच पर आ जाते हैं। बाटलीवाला सूरदास का सिर अपनी गोद में ले लेता है, जयकृष्ण बिजली का पंखा लाकर सामने रख देता है। एक और आदमी पानी लाकर सूरदास के मुँह पर छीटें देता है। कई दर्शक रंग-मंच पर चढ़ जाते हैं।]

बाटली०—(जयकृष्ण से) **पर्दा गिरा दो, और डाक्टर को बुला भेजो**

जयकृष्ण—(चिल्लाकर) **पर्दा गिरा दो, और कोई आदमी जाकर डाक्टर को बुला लाओ।**

बाटली०—सूरदास, होश में आओ भाई!

जय०—(चिल्लाकर) **पर्दा गिरा दो! पर्दा गिरा दो!!**

[यवनिका पतन]

—:०:—

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का घर

समय—दोपहर

[लाजवन्ती और शामलाल]

लाजवन्ती—इसके बाद ?

शामलाल—इसके बाद हमने रूपकुमारी और उसकी माँ को साथ लिया, और मोटर में बैठकर दलीप की खोज में निकले। सबसे पहले स्टेशन पर गए, फिर घाट देखे, फिर गलियों और बाज़ारों की ख़ाक छानी। मगर उसका कहीं पता न लगा। उस समय भाई साहब को अगर तुम देखतीं, तो डर जातीं। उनके मुँह पर एक रंग आता था, एक रंग जाता था। कभी पीला, कभी सफ़ेद, कभी एक दम चुप हो जाते थे। शायद समझते होंगे, कि लड़का हाथ आकर हाथ से निकला जाता है। मगर मेरा मन कहता था, आज भगवान् भला करेगा, और भगवान् ने भला किया।

लाज०—(मुस्कराकर) इस तरह नहीं, खोलकर कहो।

शाम०—पोलीस के एक आदमी ने बताया, कि उसने एक अनमने से युवक को शहर से बाहर जाते देखा था। वह युवक घबराया हुआ, सहमा हुआ, खोया हुआ था--ऐसे जैसे कोई सुपने में चल रहा हो, ऐसे जैसे कोई अपने आप से डरकर भागा जा रहा हो, ऐसे जैसे कोई अनदेखे किसी बोझ तले दबा जा रहा हो। और जब सिपाही ने उसकी शक्ल-सूरत बयान की, तो हमें विश्वास हो गया, कि यह दलीप ही है। बस हम उसी तरफ़ चले, और थोड़ी देर बाद हमने उसे सड़क पर जाते देखा।

लाज०--काशी से कितनी दूर?

शाम०—(सोचकर) कोई पाँच-छै मील दूर। उस समय उसकी पीठ हमारी ओर थी, और वह धीरे धीरे चल रहा था। हमने अपनी मोटर को रोक लिया और नीचे उतरने लगे। इतने में सामने से एक और मोटर आती दिखाई दी। अब दोनों मोटरों की रोशनी उस पर पड़ रही थी, और वह रोशनी से बचना चाहता था। शायद डरता था, कि कोई पहचान न ले। एक क्षण के लिए उसने रुककर सोचा, और फिर एक तरफ़ भागा। मगर उधर एक वृक्ष था, जिसे उसकी चुंध्याई हुई आँखों ने न देखा था। वह अपने ज़ोर में उसके साथ टकरा कर पीछे की ओर गिरा, और उधर से आती हुई मोटर के साथ टकराया, और दस गज़ परे जा पड़ा। उस समय हमारा दिल धक धक कर रहा था।

लाज०—(सहमकर) भगवान् ने बचा लिया, वरना मोटर के नीचे आ जाता।

शाम०—हमने जाकर देखा तो बिलकुल बेसुध पड़ा था, और उसके सिर से लहू बह रहा था। प्रारब्ध अच्छी थी, वहाँ एक डाक्टर मिल गया। उसने मरहम-पट्टी कर दी, और हम उसे मोटर में डाल कर यहाँ ले आए। अब देखें, क्या होता है? अभी तक तो किसी को पहचानता नहीं।

लाज०—डाक्टर क्या कहता है?

शाम०—अभी कुछ नहीं कहता--कोशिश कर रहा है।

लाज०—सब कुछ ठीक हो जाएगा। आप दस हज़ार रुपया निकालिए।

शाम०—(मुस्कराकर) क्या मतलब?

लाज०—मैंने मनौती मानी थी, कि जब दलीप मिल जाएगा, तो दस हज़ार रुपया दान करूँगी।

शाम०—(हंसकर) मनौती तुमने मानी, जुर्माना मुझे हो। यह किस दुनिया का न्याय है?

लाज०—मैं कुछ नहीं कहती। आप ही अपनी दिल पर हाथ रख कर कहिए, यह जुर्माना किसे होना चाहिए? मुझे या आपको?

शाम०—(गम्भीरता से) लाज! आज मुझे बीस साल के बाद खुशी मिली है। कृपा करके आज कोई ऐसा प्रसंग न छेड़ो, जिससे मेरा मन फिर रोने लगे। घाव पर कपड़ा भी छुरी बनकर लगता है। दुखे हुए अंग को हवा भी दुखा देती है।

लाज०—तो फिर दस हज़ार रुपया निकालिए?

शाम०—तुम दस हज़ार कहती हो, मैं बीस हज़ार दूँगा, तीस हज़ार दूँगा। मगर उसे स्वस्थ तो हो लेने दो।

[यशोदा और भंडारी का प्रवेश।]

भंडारी—क्षमा कीजिएगा, हम पूछे बिना चले आए।

लाज०—चूंकि हम अभी तक विलायत नहीं गए, इस लिए तुम्हारी भूल माफ़।

शाम०--(यशोदा से) अब रूप का क्या हाल है ?

यशोदा—वही हाल है जो पहले था।

भंडारी—मैं कहता हूँ, जब तक दलीप (यशोदा की तरफ़ देखकर) मेरा मतलब है, दीपक ठीक नहीं हो जाता, तब तक रूपकुमारी के मुँह पर हँसी-खुशी कैसे आ सकती है ? मेरा मतलब है—

लाज०—(मुस्कराकर) अब दूसरी बात भी कह दो—जब मैं इंगलैंड गया था। (सब कहकहा लगाकर हँसते हैं।)

भंडारी--(यशोदा से) मैंने रायबहादुर से कह दिया है, कि दीपक ने अपने लिए बहू चुन ली है। अब आपका काम केवल यह है, कि इस पर स्वीकृति की मुहर लगा दें।

[बाहर से रायबहादुर की आवाज़]

शामलाल !

शाम०—(ऊँची आवाज़ से) आया ! (लाजवन्ती से) तुम भी चलोगी ?

लाज०—चलो।

[दोनों का प्रस्थान]

भंडारी—(यशोदा से) रायबहादुर कहते हैं, मुझे यह संबन्ध स्वीकार है।

यशोदा—मगर....

भंडारी—आप ज़रा चिन्ता न करें। भगवान की कृपा से सब कुछ ठीक हो जाएगा।

[दोनों का प्रस्थान]

———

दूसरा दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल के घर का एक दूसरा कमरा

समय—दोपहर

[हीरालाल, शामलाल और तीन डाक्टर। ज़रा परे लाजवन्ती]

हीरालाल—(उदासी से) डाक्टरों की सम्मति है, कि अब दिमाग़ ठीक नहीं हो सकता।

शाम०—(घबराकर) क्या मतलब ?

एक डाक्टर—आप के दलीप की स्मरण-शक्ति जाती रही है। अब उसे पहले की कोई बात याद नहीं रही।

शाम०—तो फिर इलाज क्या है ?

डाक्टर—इलाज सिर्फ़ आपरेशन है !

शाम०—(घबराकर) आपरेशन !

दूसरा डाक्टर—और दिमाग़ का आपरेशन सिर्फ़ जरमनी में होता है।

शाम०—हम जरमनी जाने को तैयार हैं।

पहला डाक्टर—मगर वहाँ जाकर आपरेशन कराने के बाद भी स्मरण-शक्ति लौट आएगी, यह भी निश्चित नहीं। शायद यह सब कुछ करने पर भी कुछ न बने।

शाम०—कोशिश करने में क्या हर्ज है ?

हीरा०—कर लो।

दूसरा डाक्टर—आपरेशन में जान का ख़तरा भी है।

शाम०—(हताश होकर) तो इसका यह मतलब है, कि यह रोग असाध्य है।

तीसरा डाक्टर—इसका यह मतलब है, कि अगर किसी समय उसके दिमाग़ को अन्दर या बाहर से कोई विशेष धक्का पहुँचे, और वह उस धक्के को सह सके, तो सम्भव है, उसकी स्मरण शक्ति एक क्षण में लौट आए। दूसरे शब्दों में मैं यह कहना चाहता हूँ, कि इस बीमारी का इलाज डाक्टरों के पास नहीं है, प्रकृति के पास है। प्रकृति पर छोड़ दीजिए।

[शामलाल बेचैनी से इधर उधर टहलता है।]

हीरा०—अब बताओ, तुम्हारी क्या राय है?

शाम०—(रुंधे हुए गले से) मेरी तो राय है, कि हमें अपनी ओर से भरसक यत्न करना चाहिए। कौन जाने, भगवान् ठीक कर दे। जिस भगवान् ने हमें बेटा लौटा दिया है, वह बेटे को उसकी स्मरण-शक्ति भी लौटा सकता है। उसके घर में काहे का अभाव है।

[लाजवन्ती इशारे से शामलाल को अपने पास बुलाती है और उससे धीरे-धीरे कुछ कहती है। शामलाल सुनकर रायबहादुर की तरफ़ बढ़ता है।]

हीरा०—लाजवन्ती की क्या राय है?

शाम०—वह कहती है, मैं यह आपरेशन कभी न होने दूँगी। जीवन पहले, स्मरण-शक्ति पीछे।

पहला डाक्टर—बिल्कुल ठीक !

हीरा०—मेरा भी यही ख्याल है, लाजवन्ती ठीक कहती है। दलीप को भूली हुई बातें याद आएँ, या न आएँ; मगर वह हमारे सामने चलता फिरता और हँसता खेलता रहे। मेरे लिए यही बहुत है। मैं इसी पर संतोष कर लूँगा।

आवाज़—मगर सूरदास—

[सब आँख उठाकर देखते हैं। भंडारी बोलते बोलते आता है।]

भंडारी—मगर सूरदास को तो सूचना देनी ही होगी।

शाम०—सूचना दें, या उसे यहाँ बुला लें ?

भंडारी—यह और भी अच्छा ! यहीं बुला लो।

शाम०—(डाक्टर से) आपकी क्या राय है ? क्या यह नहीं हो सकता, कि सूरदास को देखकर दलीप को अपना भूला हुआ जीवन याद आ जाए ?

पहला डाक्टर—मुश्किल है।

दूसरा डाक्टर—अगर इस लड़के पर रूपकुमारी का असर नहीं हुआ, तो सूरदास का क्या असर हो सकता है ?

हीरा०—(सोचकर) तो अभी रहने दो।

भंडारी—मगर वहाँ सूरदास का क्या हाल होगा, आप को कुछ इस का भी ख्याल है ?

हीरा०—उसका वहाँ क्या हाल होगा, यह तो मैं नहीं जानता, मगर यह जानता हूँ, कि यहाँ आकर उसका दिल फट जाएगा।

ज़रा सोचिए, उसने इस लड़के को पाला है, इस पर अपनी जान छिड़की है, इस पर, पता नहीं, क्या क्या आशाएँ बाँधी हैं। और अब वह आकर देखेगा, कि यह लड़का उसे भी नहीं पहचानता तो उसका क्या हाल होगा? मैं बाप हूँ, मैं जानता हूँ, ऐसी अवस्था में वह किस तरह तड़पेगा? इस लिए मेरा ख्याल है अभी उसे कोई समाचार न भेजा जाए। हाँ, इसे होश आ जाए, तो सूरदास को उसी समय बुला लेना होगा।

तीसरा दृश्य

स्थान—काशी में कालीदास नाटक कंपनी।

समय—संध्या

[बाटलीवाला और उसका सहायक जयकृष्ण।]

बाटली०—यह अभिनेता लोग इतने छोटे दिल के होंगे, इसकी मुझे ज़रा भी आशा न थी। वेतन मिलने में चार दिन की देर हुई और इनकी जान निकलने लगी।

जय०—(धीरे से) चार दिन की नहीं, चार महीने की।

बाटली०—(क्रोध से) चार महीने की ही सही! मगर उन्हें इतना तो सोचना चाहिए, कि मालिक कष्ट में है, ज़रा धीरज रखें।

जय०—कहते हैं—खाएँ कहाँ से?

बाटली०—तो कह दो, जाकर नालिश कर दें। जो होगा, देखा जाएगा।

[डाकिया एक रजिस्ट्री लाकर बाटलीवाला के सामने रख देता है। बाटलीवाला रसीद पर हस्ताक्षर करता है, और पत्र जयकृष्ण की ओर सरका देता है। जयकृष्ण पत्र पढ़कर ठंडी आह भरता है।]

बाटली०—क्या है?

जय०—मास्टर अबदुलकरीम का भी नोटिस आ गया।

बाटली०—तो आहें भरने की क्या ज़रूरत है ?

जय०—और सब लोग नोटिस दे चुके थे, एक अबदुलकरीम बाक़ी था। आज उसका भी नोटिस आ गया। इसका मतलब यह है, कि कम्पनी समाप्त हुई।

बाटली०—तो और रास्ता ही क्या है तुम बताओ ?

जय०—कोई और काम न शुरू कर दें ?

बाटली०—बोलो !

जय०—जूतों की दुकान खोल लें !

बाटली०—(चमककर) हम यह काम करेंगे ?

जय०—(सहमकर मगर साहस से) आप अमीर आदमी हैं, आप न करें। मगर मैं ग़रीब हूँ, मुझे तो कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा।

[बाटलीवाला सोचते-सोचते टहलने लगता है।]

बाटली०—अगर सूरदास फिर आ जाए, तो एक बार फिर उसी तरह चाँदी बरसने लगे !

जय०—अब सूरदास के फिर आने और चाँदी बरसने के दिन गए।

बाटली०—यही तो मैं सोच रहा हूँ, कि सूरदास को किस तरह फिर से लाया जाए।

जय०—अब यह आशा छोड़ दीजिए। सूरदास आ चुका!

बाटली०—(किसी निश्चय पर पहुँचकर) जयकृष्ण! चलो एक बार सूरदास के पास फिर चलें।

जय०—(हिचकिचाकर) मगर गालियाँ कौन खाएगा?

बाटली०—(मुस्कराकर) तुम।

जय०—और अगर वह झाड़ू लेकर मारने दौड़ा, तो—

बाटली—(गम्भीरता से) मेरी खोपड़ी की तारीफ़ करो।

जय०—कोई नई आयोजना?

बाटली०—अरे जयकृष्ण! ऐसी बात सूझी है, कि फड़क उठोगे यार मेरे! फड़क उठोगे!

जय०—तो चलो!

चौथा दृश्य

स्थान—सूरदास के घर में दीपक का कमरा।

समय—रात

[कल्लो की माँ और एक नौकर।]

कल्लो की माँ—तुमसे कै बार कहा है, कि सूरदास बीमार पड़ा है, धीरे धीरे बोला करो। मगर तुम ज़रा ख्याल नहीं करते। क्या तुम बहरे हो?

[नौकर पानी की बालटी लेकर चला जाता है। बाटलीवाला और जयकृष्ण का प्रवेश। कल्लो की माँ चौंकती है।]

बाटली०—दीपक का कुछ पता मिला, कल्लो की माँ!

कल्लो०—इस लौंडे ने सूरदास को मार डाला। अब क्या हाल है?

कल्लो०—वही जो पहले था। (ठंडी आह भरकर) कभी चुप चाप लेट जाता है, कभी गरजने लगता है। कभी गिड़गिड़ाकर दीपक को बुलाने लगता है, कभी भूमि पर गिर पड़ता है, और बच्चों के समान फूट-फूट कर रोने लगता है।

जय०—मैंने ऐसा प्यार करने वाला बाप आज तक नहीं देखा।

बाटली०—हम ज़रा सूरदास को देखने आए हैं।

कल्लो०—न बाबा! तुम्हारी आवाज़ सुनकर तो वह और भी पागल हो उठेगा। क्या तुम उस दिम की घटना भूल गए हो?

बाटली०—देखो, कल्लो की माँ! हम कल यहाँ से बाहर जा रहे हैं। इस लिए सोचा, चलो सूरदास से भी मिलते चलें। आख़िर तुम जानती हो, उसने बीस साल तक हमारे साथ काम किया है।

जय०—और अब बीमार है।

कल्लो०—मगर वह तो तुम्हारा नाम सुनकर ही—

बाटली०—तो उसको बताने की क्या ज़रूरत है? हम चुपचाप दूर ही से उसे देख लेंगे।

[अन्दर से सूरदास की आवाज़]

कल्लो की माँ! ओ कल्लो की माँ!!

कल्लो०—लो फिर दौरा हुआ।

[दीपक के वस्त्र लिए हुए सूरदास का प्रवेश।]

सूरदास—कल्लो की माँ! क्या तुम यहाँ हो?

कल्लो०—हाँ बाबा! मगर तुम बाहर क्यों आ गए?

सूरदास—देखो! आज मैं कितना खुश हूँ? आज मेरा जी चाहता है अपनी सितार बजाऊँ। क्या तुम जानती हो, आज मैं क्यों खुश हूँ।

कल्लो०--(टूटे हुए दिल से) बारह रुपए।

सूरदास--तो आज से मैंने पन्द्रह कर दिए। मगर एक बात याद रखना। मेरे दीपक से कभी लड़ाई झगड़ा न करना। (कपड़े फेंककर) यह ले सूट, यह दर्ज़ी को दे देना। और कहना अच्छी तरह से सिए। दीपक ख़राब कपड़े नहीं पहनता। कल्लो की माँ, ज़रा सोचो उधर दर्ज़ी कपड़े सिएगा, इधर मैं अपने घर में बैठकर दीपक के लौटने की खुशी में अपनी सितार बजाऊँगा। (सूरदास वापस मुड़ता है, मगर भूल से उधर चला जाता है जहाँ दीपक का मेज़ पड़ा है। वहाँ जाकर हाथों से टटोलता है, और एक पुस्तक हाथ में लेकर कहता है) कल्लो की माँ, क्या तुमने मेज़ को साफ़ नहीं किया। देखो कितनी धूल पड़ी हुई है। अगर दीपक यह हाल देखे तो क्या कहे। (पुस्तक को अपने कपड़े से पोंछकर रख देता है) यह नौकर लोग तो अपने आप कोई काम नहीं करते।

[कल्लो की माँ चुप-चाप करुणा-पूर्ण-आँखों से बाटलीवाला और जयकृष्ण की ओर देखती है। सूरदास आगे बढ़ता है और उस मेज़ के निकट पहुँचता है जहाँ भोजन का थाल रखा है। सूरदास भोजन को छूकर देखता है, तो और भी बिगड़ उठता है।]

सूरदास—यह क्या! एक दम ठण्डा भोजन!! कल्लो की माँ, मैंने तुमसे कितनी बार कहा है, कि मेरा दीपक ठण्डा भोजन पसन्द नहीं करता। मगर तुम इसकी सदा उपेक्षा कर जाती हो। ज़रा

सोचो! क्या उसने आज तक कभी ऐसा ठण्डा भोजन खाया है। और—

[सूरदास जल्दी-जल्दी पलंग के पास जाकर देखता है। विस्तरा ठीक बिछा है, मगर सूरदास को खिन्नता के कारण कोई बात पसन्द नहीं आती। वह एक तकिया उठा लेता है और उसे हाथ में लेकर कहता है।]

सूरदास—यह तकिया क्या यहाँ रखा जाता है? और यह देखो चादर कहाँ लटक रही है?

[बाटलीवाला जयकृष्ण को संकेत करता है, कि बाजा बजाओ। जयकृष्ण बाजे की ओर बढ़ता है।]

सूरदास—(अपना वक्तव्य ज़ारी रखते हुए) कल्लो की माँ! पता नहीं आज-कल तुमको क्या हो गया है? पता नहीं आज-कल तुम सारे-सारे दिन क्या करती रहती हो? पता नहीं आज-कल तुम्हारा ध्यान किधर रहता है? क्या तुमने कल रात दीपक के लिए दूध का गिलास रखा था? (क्रोध से) कल्लो की माँ! जवाब दे। क्या तूने कल रात दीपक के लिए दूध का गिलास रखा था? अगर रखा था तो मुझे दिखा, कहाँ है, देखूँ गरम है या नहीं? कल्लो की माँ! (ज़ोर से) कल्लो की माँ!

[जयकृष्ण बाजे पर 'मूरख मन होवत क्यों हैरान' की ट्यून बजाना आरम्भ करता है। सूरदास चौंकता है।]

सूरदास—यह कौन! क्या दीपक आ गया? (खुशी से) कल्लो

की माँ, मेरा दीपक आ गया (जल्दी-जल्दी द्वार की ओर बढ़ते हुए) मेरा दीपक आ गया।

[बाटलीवाला सामने आकर सूरदास को रोक लेता है।]

बाटली०—सूरदास!

सूरदास—कौन? मैनेजर! आप यहाँ क्या करने आए हैं?

बाटली०—देखो सूरदास! मैंने तुम्हारे दीपक को ढूँढने का एक उपाय सोचा है।

सूरदास—(निराश होकर) तो क्या यह दीपक नहीं है?

बाटली०—मैंने निश्चय किया है कि तुम्हारी जीवन-कहानी का एक नाटक लिखवाया जाए और उसका नाम रखा जाए 'सूरदास का बेटा' या 'सूरदास का पुत्र-प्रेम'। तुम उसमें सूरदास का काम करोगे। तुम उसमें पितृ-प्रेम को रंगमंच पर जीती जागती वस्तु बनाकर दर्शकों के सामने उपस्थित करोगे। तुम लोगों के दिल में—

सूरदास—(बिगड़कर) मैं अब नाटक में काम नहीं करूँगा।

बाटली०—अरे भाई सुनो तो सही। तुम तो बात बात पर बिदकते हो। तुम्हारे पुत्र-प्रेम की अमर कहानी को लेकर हम भारतवर्ष के हर शहर में जाएँगे; और वहाँ बड़े बड़े विज्ञापन देंगे। क्या यह सम्भव है कि दीपक यह विज्ञापन देखे और नाटक देखने के लिए दौड़ा हुआ न चला आए। कम से कम तुम्हें देखने के लिए एक बार तो उसका मन अधीर हो उठेगा।

सूरदास—(कुछ कुछ समझकर) अच्छा ! फिर ?

बाटली०—और जब वह वहाँ आकर देखेगा कि जिस प्राणी ने उसके प्राण बचाए हैं, जिसने उसका पिता न होकर उसे पिता से बढ़कर प्यार किया है, जिसने उसके लिए भगवान् का भजन छोड़ कर संसार की मोह ममता में फँसना स्वीकार किया है। वही आदमी वही देवता; वही स्नेह का अवतार, रंगमंच पर खड़ा दीपक दीपक कह कर चिल्ला रहा है और उसकी अन्धी आँखों से प्यार का पानी बह रहा है। तो क्या वह तुम्हारे चरणों में न आ गिरेगा। सूरदास ! आखिर वह आदमी है, मिट्टी का लोन्दा नहीं है।

सूरदास—(आशा पूर्ण स्वर में) अच्छा—अच्छा अगर तुम्हारी यही सम्मति है, तो मैं चलूँगा।

बाटली०—तुम चलोगे तो मैं कहता हूँ तुम्हारा बेटा तुम्हें मिलेगा।

[सूरदास बेसुध होकर अपने शरीर और आत्मा की सम्पूर्ण-शक्तियों को लेकर सीधा खड़ा हो जाता है और फिर घुटनों के बल झुककर प्रार्थना का यह गीत गाने लगता है।]

गीत

अन्धे की लाठी तूही है, तूही जीवन-उजयारा है,
तूही आकर सम्भाल प्रभू ! तेरा ही एक सहारा है।
अन्धे की लाठी...
दुख दर्द की गठड़ी सिर पर है, पग पग पर गिरने का डर है,

परमेश्वर अब पत राख तुही, तूही पत राखन हारा है।

अन्धे की लाठी...

जिन पर आशा थी छोड़ गए, बालू के घरौन्दे फोड़ गए,

मुँह मोड़ गए, मन तोड़ गए, अब जग में कौन हमारा है।

अन्धे की लाठी...

[पर्दा गिरता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—लाहौर का एक बाज़ार

समय—दोपहर

[एक मसखरा गले में ढोल डाले और हाथ में विज्ञापन लिए आता है, और ढोल बजाता है। जब लोग एकत्रित हो जाते हैं, तो उनमें विज्ञापन बाँटता है, और कहता है।]

मसखरा—लाहौर के निवासियो! काशी का यह मसखरा, काशी से चलकर आप को यह शुभ-समाचार सुनाने आया है, कि आपके लाहौर में कालीदास नाटक कम्पनी आई है, और अपने साथ कई प्रसिद्ध अभिनेताओं के अतिरिक्त भारतवर्ष का वह अद्वितीय कलाकार भी लाई है, जो भारतवर्ष से बाहर भी मशहूर है। मेरा इशारा सूरदास की तरफ़ है। सूरदास का नाम आपने सुना होगा, मगर उसके गले की मीठी तानें न सुनी होंगी, न उसे रंग-भूमि पर काम करते देखा होगा। आज वह अपनी जीवन-कहानी सुनाएगा। जो सज्जन इस महान कलाकार का जीवन-नाटक देखना चाहें, वह रात के साढ़े नौ बजे कालीदास नाटक कम्पनी में

आ जाएं। वहाँ सूरदास भी होगा, काशी का (सिर झुकाकर) **यह मसखरा भी होगा।**

[ढोल बजाता है, विज्ञापन बाँटता है, और उछलता कूदता हुआ चला जाता है।]

छठा दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का घर।

समय—तीसरा पहर।

[यशोदा, लाजवन्ती और एक नौकर]

यशोदा—(नौकर से) मेरा असबाब बाँधो, मैं आज काशी जा रही हूँ।

लाजवन्ती—ज़रा ठहरो। (यशोदा से) बहन! चाहे मानो, न मानो, मगर आज तो न जाने दूँगी।

यशोदा—रूप का ब्याह कर लिया, मनका यह बोझ भी हलका हुआ। ज़रा सोचकर देखो, अब मेरा यहाँ ठहरना उचित है क्या? आख़िर बेटी के घर में कब तक पड़ी रहूँ?

लाज०—दो-चार दिन और! और अब वहाँ तुम्हारा कौन है? अकेले पड़े पड़े तो आदमी का जी भी ऊब जाता है।

यशोदा—(सोचकर) यह तो ठीक है, मगर बहन अब जाने ही दो, आज भी जाना है, दो दिन बाद भी जाना है।

(शामलाल का प्रवेश)

लो देखो! यह तो आज ही जाने को तैयार हो गई। लाख

कहा है दो दिन और ठहर जाओ, मानती ही नहीं। आप इनके सामने नौकर से कह दीजिए, असबाब न बाँधे।

शाम--(नौकर से) जाओ, जाकर इनका असबाब बाँधो।

यशोदा--आप तो नाराज़ हो गए! मगर ज़रा सोचिए, इसमें नाराज़ होने की क्या बात है?

शाम०—(यशोदा की बात का उत्तर न देकर, नौकर से) और हमारा असबाब भी बाँध दो।

[यशोदा आश्चर्य से शामलाल की ओर देखती है।]

लाज०—हमारा असबाब क्यों?

शाम०—हम भी काशी जा रहे हैं।

लाज०—हम भी काशी जा रहे हैं! यह कैसे?

शाम०—भाई साहब की आज्ञा! (नौकर चला जाता है।)

यशोदा—बहुत ही अच्छी बात है! कौन कौन जा रहा है?

शाम०—मैं, (लाजवन्ती की ओर इशारा करके) यह, आप, भाई साहब, रूप, दलीप, डाक्टर, दो चार नौकर!

यशोदा—मैं तो पहले ही कह रही थी, काशी चलो। लड़के का दिमाग़ वहीं चलकर ठीक होगा।

शाम०—आपने दो-चार बार कहा होगा, मैंने हज़ार बार कहा था, कि या हम काशी चलें, या सूरदास को यहाँ बुलाएँ। मगर भाई साहब सुनते ही न थे। आज अपने आप तैयार हो गए।

यशोदा—तो चलकर तैयारी कर लें। समय बहुत कम है।

[प्रस्थान]

लाज०—क्या आज ही जाना है ?

शाम०—आज ही का क्या मतलब ? अभी दो घंटे बाद। छै बजे गाड़ी छूटती है।

लाज०—ओ बाबा ! इतना थोड़ा समय ! तो ज़रा जल्दी करूँ।

[एक ओर से शामलाल और लाजवन्ती का प्रस्थान, दूसरी ओर से दीपक और रूपकुमारी का प्रवेश, बातें करते हुए।]

रूप०—तो तुम्हें कुछ याद नहीं आता ? मैंने तुम्हें एक पत्र लिखा था ?

दीपक—(चलते चलते रुककर) तुमने मुझे एक पत्र लिखा था ?

[फिर चलने लगता है।]

रूप०—(फिर रोककर) और तुम्हें यह भी याद नहीं, कि उस दिन तुम विश्व-विद्यालय में सर्वप्रथम रहे थे, और उस दिन गंगा के किनारे हमारी सुलह हुई थी।

दीपक—मुझे कुछ याद नहीं। (फिर चलने लगता है।)

रूप०—तुम्हें यह भी याद नहीं, कि सूरदास कौन है ? कल्लो की माँ कौन है ? भंडारी कौन है ? मैं कौन हूँ ? (दीपक जाकर एक सोफ़े पर बैठ जाता है।) ज़रा दिमाग़ पर ज़ोर देकर सोचो। तुम सूरदास के पास रहते थे। वह तुम्हें अपना बेटा कहता था। ज़रा सोचो।

दीपक—क्या करूँ? मुझे कुछ याद नहीं आता। हाँ, कभी कभी ऐसा मालूम होता है, जैसे याद आ रहा है, जैसे बहुत दूरी पर पर्दे के पीछे कोई ज्योति दिखाई दे रही है। मगर जब मैं और सोचता हूँ, जब मैं उस ज्योति के निकट पहुँचने का यत्न करता हूँ, जब मैं उस पर्दे को हटाना चाहता हूँ, तो मेरा सिर चकरा जाता है, पृथिवी-आकाश घूमने लगते हैं, और वह झिलमिलाती हुई ज्योति जाने कहाँ चली जाती है।

रूप०—तुमने एक बार एक गीत गाया था—'मूरख मन! होवत क्यों हैरान!'

दीपक—कहाँ गाया था?

रूप०—'रेडियो में', याद आया?

दीपक—(सोचते हुए) नहीं।

[रूपकुमारी हारमोनियम के पास जा बैठती है।]

—मुझे कुछ याद नहीं आता।

रूप०—देखो! मैं याद कराती हूँ।

[रूपकुमारी बाजे के साथ गाने लगती है।]

गीत

मूरख मन! होवत क्यों हैरान?

सच-मुच तेरी रात अँधेरी, संकट में हैं प्राण,

बाँध कमरिया, ढूँढ़ डगरिया आन मिले भगवान।

मूरख मन!.........

(रूप के साथ दीपक भी गाना शुरू कर देता है।)

मूरख मन ! होवत क्यों हैरान ?

रूप०—(गाना बन्द करके) तुम्हें कुछ याद आया ?

दीपक—(उठकर टहलते हुए) मुझे यह गीत बड़ा मीठा मालूम होता है।

रूप०—इसके आगे क्या है, जानते हो ?

दीपक—नहीं। (रूप के पास जाकर) यह गीत तुम्हारे मुँह से अच्छा मालूम होता है। गाओ !

(रूपकुमारी रोते रोते गाती है। दीपक सुनता है।)

आनन्द नगरिया दूर नहीं अब काहे को घबरावत है, ?

भगवान के घर से तेरे लिए इक सुख संदेसा आवत है।

मूरख मन !.......

[रूपकुमारी रोते रोते गाती है, और इसके साथ ही साथ दीपक की ओर देखती जाती है, कि उसकी स्मरण-शक्ति लौटती है, या नहीं। मगर दीपक की स्मरण-शक्ति नहीं लौटती। रूपकुमारी गाना बन्द कर देती है, और फूट फूट कर रोती है।]

दीपक—तुम रोती क्यों हो ? इसमें मेरा क्या दोष है ?

रूप०—(रोते रोते) पता नहीं, भगवान तुम्हें स्मरण-शक्ति कब देगा ?

[यशोदा का प्रवेश]

यशोदा—क्या तुम्हें मालूम है, आज हम सब लोग काशी जा रहे हैं।

रूप०—नहीं माँ! हमें तो किसी ने नहीं बताया।

यशोदा—तो अब मैं बताती हूँ, तुम दोनों भी हमारे साथ चलोगे। तैयार हो जाओ।

दीपक—(बालकों के समान) मैं कहता हूँ, क्या काशी बहुत सुन्दर नगरी है?

यशोदा—(मुस्करा कर) मैं कहती हूँ, यह बात मैं कल तुमसे पूछूँगी।

[एक नौकर का प्रवेश]

नौकर—(दीपक से) आपको ज़रा बाहर बुला रहे हैं।

दीपक—मुझे?

नौकर—जी हाँ आपको भी और (रूप की ओर इशारा करके) आपको भी।

दीपक—(उठकर) अच्छा! (रूप से) चलो!!

[पर्दा गिरता है]

———

सातवाँ दृश्य

स्थान--रायबहादुर हीरालाल के घर का आँगन

समय—तीसरा पहर

[दुर्गादास साधु के वेष में आता है। पीछे पीछे हीरालाल और शामलाल हाथ बाँधे हुए आ रहे हैं।]

दुर्गादास—मुझे यह सुनकर खुशी हुई, कि तुम्हारा बेटा मिल गया।

शाम०—मगर स्वामी जी ! हमें अभी पूरा बेटा नहीं मिला, आधा मिला है। आपके आशीर्वाद से जो आधा नहीं मिला, वह भी मिल जाएगा।

दुर्गादास—भई ! मैं किस योग्य हूँ ?

[दीपक और रूपकुमारी का प्रवेश]

हीरा--यही वह लड़का है, और यह उसकी बहू है। बेटा ! स्वामी जी को प्रणाम करो। इनका आशीर्वाद हमारी बिगड़ी हुई तक़दीर को सीधा कर देगा।

[दीपक और रूपकुमारी दुर्गादास को प्रणाम करते हैं।]

दुर्गा०--आदमी कुछ नहीं करता। जो कुछ करता है, भगवान् करता है।

शाम०--महात्मा जी! आशीर्वाद दीजिए!

दुर्गा०—भगवान् तुम्हारा कल्याण करें।

[बाहर कोई ढोल बजाते हुए गुज़र जाता है]

हीरा०—स्वामी जी! अब मेरा मन कहता है, मेरा बेटा ठीक हो जाएगा।

दुर्गा०—भगवान् कृपा करेगा भाई! भगवान् पर आशा रखो।

शाम०—स्वामी जी! मेरी एक प्रार्थना है।

दुर्गा०—कहो भाई!

शाम०—मगर आप को उसे स्वीकार करना होगा।

दुर्गा०—अगर स्वीकार करने वाली बात होगी, तो साधु उसे कभी अस्वीकार न करेगा।

शाम०—बात यह है, कि मैं कुछ धन धर्म के काम में लगाना चाहता हूँ, और मेरी श्रद्धा यह है कि वह धन आप के पवित्र हाथों से खर्च हो!

हीरा०--स्वामी जी! यह मेरा भी अनुरोध है।

दुर्गा०--भाई! इस समय अगर तुम मुझे धन दे दोगे, तो मेरे आशीर्वाद का प्रभाव जाता रहेगा, और इससे मेरा और तुम्हारा

दोनों का अमंगल होगा।

[दुर्गादास तेज़ी से बाहर चला जाता है।]

दीपक—पिता जी! यह कौन महात्मा थे।

हीरा०—बेटा! इनका गृहस्थ मैंने नष्ट किया है, और इन्होंने मुझे फिर भी आशीर्वाद दिया है।

शाम०—भाई साहब!......

हीरा०—तुमने देखा, यह ग़रीब आदमी कितना अमीर है, और हम अमीर लोग इसके सामने कितने ग़रीब, कितने तुच्छ, कितने छोटे हैं!

शाम०—जो आदमी किसी को क्षमा कर सकता है, वह आदमी नहीं, देवता है।

[भंडारी का प्रवेश]

भंडारी—कौन देवता है?

हीरा०—(भंडारी की बात का उत्तर न देकर) लो भई! हम आज काशी जा रहे हैं।

भंडारी—और अगर काशी यहाँ आ जाय, तो—

शाम०—क्या मतलब?

भंडारी—(जेब से एक विज्ञापन निकालकर और उसे हीरालाल के हाथ में देकर) सूरदास लाहौर में।

हीरा०—(ख़ुशी से) शामलाल! देखो, भगवान् ने सूरदास को

यहीं भेज दिया है ?

[शामलाल विज्ञापन पढ़ता है ।]

शाम०--मालूम होता है, हमारी पाप की अवधि समाप्त होगई।

भंडारी--मेरा मतलब है, सूरदास दीपक के बिना काशी में रह नहीं सकता था ।

हीरा०—चलो, चलकर असबाब खुलवा दें। अब काशी जाने की कोई आवश्यकता नहीं। हमारा मनोरथ यहीं सिद्ध होगा ।

[सबका प्रस्थान]

आठवाँ दृश्य

स्थान—कालीदास नाटक कंपनी का रंग-मंच

समय--रात

[कालीदास नाटक कंपनी में "सूरदास का पुत्र-प्रेम" नामक नाटक खेला जा रहा है, जिसमें सूरदास स्वयं सूरदास की भूमिका में काम कर रहा है। दर्शकों में हीरालाल, शामलाल, दीपक, रूप, यशोदा, लाजवन्ती, भंडारी भी उपस्थित हैं। इस समय नाटक का वह दृश्य दिखाया जा रहा है, जब दीपक सूरदास से आकर यह प्राण-घातक प्रश्न पूछता है, कि क्या मैं आप ही का पुत्र हूँ।]

रंग-भूमि

सूरदास—तो बेटा ! सुनो भगवान् तुम्हें पहाड़ का कलेजा दे। बीस साल की बात है, जब काशी में एक दिन गंगा के घाट पर एक अबोध बालक पड़ा था। उसे एक अंधे भिखारी ने उठाया, पाला, पढ़ाया और बड़ा किया। आज वह बालक दीपक है, आज वह अंधा भिखारी सूरदास है।

रंग-भूमि का दीपक—तो मैं अपने घर में भी पराया हूँ।

सूरदास—(बाहें फैलाकर) तू मेरी अंधी दुनिया की शोभा है, तू मेरे जीवन की निराश-निशा में आशा का मीठा स्वर है, तू मेरे काँपते हुए बुढ़ापे की लाठी है।

रंग-भूमि का दीपक—नहीं, मैं अनाथ हूँ।

सूरदास—मेरे बच्चे! तू अनाथ नहीं है, तू अपने आप को अनाथ क्यों कहता है? अभी तेरा अंधा बाप जीता है, और उसके दिल में तेरे बिना और किसी के लिये स्नेह नहीं।

रंग-भूमि का दीपक—अब से एक घंटा पहले मेरी भी यही धारणा थी। मगर अब मालूम हुआ, कि मैं धोखे के अंधेरे में था। मेरे अपने बाप ही ने कह दिया, कि मैं तेरा बाप नहीं हूँ।

सूरदास—मैंने कब कहा है, कि मैं तेरा बाप नहीं हूँ? तू ही कहता है कि तू मेरा बेटा नहीं है। मगर बेटा! मेरा भगवान् जानता है कि मैंने तुझे सदा अपना बेटा समझा है, और अब भी, जब तक जीता हूँ, मैं तुझे बेटा ही समझूँगा।

रंग-भूमि का दीपक—(अपने आप से) मगर मेरे माँ-बाप ने मुझे घाट पर क्यों फैंक दिया? क्या उनके पास मेरे खिलाने के लिए रोटी न थी? क्या उनके मुँह में मुझे अपनी संतान कहने का साहस न था? क्या मैं पाप का पुत्र हूँ?

सूरदास--(रुंधे हुए गले से) तू अपने बूढ़े बाप के दिल को

तोड़ने वाली, और उसके कानों में गरम सीसा उँडेलने वाली बातें क्यों करता है ?

रंग-भूमि का दीपक--(सूरदास के पाँव छूकर) दादा !

सूरदास—(झुककर दीपक को पकड़ना चाहता है, मगर दीपक परे हट जाता है।) दीपक !

रंग-भूमि का दीपक—(जाते जाते) आशीर्वाद दीजिए, कि मुझे मेरा बाप मिल जाए !

[तेज़ी से चला जाता है।]

सूरदास—(इधर-उधर हाथ फैलाकर आगे बढ़ते हुए) मेरे बेटे ! क्या तू जा रहा है ? नहीं, आज तुझे नहीं जाना चाहिए। आज तेरा परीक्षा-फल निकला है, कल मेरे घर में तेरे मित्रों का निमंत्रण है, और तू मुझे छोड़कर जा रहा है। दीपक इधर आ ! मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ, कि भगवान् तेरे बाप को इसी घर में तेरे पास भेज दें। (कोई उत्तर न पाकर और उत्तेजित होकर) दीपक ! (ज़ोर से) दीपक !! मैं कहता हूँ, लौट आ !!! मैं कहता हूँ, मेरे पास चला आ। (रोते हुए) दीपक ! दीपक !! बेटा, तू तो इतना निर्मोही न था। तेरा वह प्यार कहाँ चला गया ? दीपक ! दीपक !!

[दर्शकों में बैठा हुआ दीपक एकाएक जोश से तनकर खड़ा हो जाता है। हीरालाल और शामलाल इत्यादि उसकी ओर आश्चर्य और आशा के मिश्रित भावों से देखते हैं। दर्शक दीपक से बैठ जाने को

कहते हैं, मगर वह किसी की परवाह नहीं करता। चारों ओर शोर मच जाता है।]

दर्शक—(चिल्लाकर) बैठ जाओ! बैठ जाओ!!

दूसरे दर्शक--कृपा करके बैठ जाओ। हमें कुछ दिखाई नहीं देता।

शाम०--(हीरालाल से) मेरा ख्याल है, इसे होश आ रहा है।

हीरा०—(दीपक की ओर देखते हुए) देखते चलो, भगवान् क्या करता है!

सूरदास—(रंग-भूमि पर अभिनय करते हुए) दीपक! मैं कहता हूँ, तुम मुझे छोड़कर मेरी खोज करने जा रहे हो? दीपक! दीपक!!

असली दीपक—(कुछ कुछ होश में आकर) यह मुझे कौन बुला रहा है?

रूपकुमारी—यह सूरदास है, क्या तुम इसे नहीं पहचानते?

[दीपक माथे पर हाथ फेरता है।]

सूरदास—(दीपक की आवाज़ सुनकर) यह किसकी आवाज़ है?

असली दीपक—यह मैं दीपक हूँ! क्या आप मुझे बुला रहे हैं? (आश्चर्य से चारों ओर देखता है।)

सूरदास—(पहचानकर और खुशी के मारे चिल्लाकर) कौन दीपक!

असली दीपक—(बिलकुल होश में आकर) कौन दादा!

रूपकुमारी—(खुशी से) होश आ गया !

सूरदास—(चिल्लाकर) दीपक !

असली दीपक—(चिल्लाकर) दादा !

सूरदास—(और भी ऊँची आवाज़ से) दीपक !

असली दीपक—(रोते हुए) दादा !

सूरदास—(आगे बढ़कर) दीपक ! तू आ गया ! तू किधर है ? तू मेरे पास आ ! दीपक तू मेरे पास आ !!

असली दीपक—(आगे बढ़ते हुए) आया, दादा ! मैं आया !

सूरदास—(भुजाएं फैलाकर) दीपक !

दीपक—(रंग-भूमि पर चढ़कर और सूरदास के गले से लिपट कर) दादा !

[हाल में कोलाहल मच जाता है। लोग नहीं समझते, कि आज उनके सामने रंग-भूमि पर नाटक और जीवन का मिलाप हो गया है और कि जिस दीपक को सूरदास नाटक में खोज रहा था, वह उसे सच-मुच मिल गया है। हीरालाल, शामलाल, रूपकुमारी, यशोदा सजल नेत्रों से सूरदास के पुत्र-स्नेह का यह स्वर्गीय दृश्य देखते हैं और रंग-भूमि पर चढ़ जाते हैं। भंडारी दर्शकों में चुप-चाप खड़ा रहता है, और यह सब कुछ देखता है। बाटलीवाला रंग-भूमि पर आकर कहता है।]

बाटलीवाला—पर्दा गिरा दो। पर्दा गिरा दो।

सूरदास--(दीपक को गले से लगाए हुए) **मैनेजर साहब ! मेरा बेटा आ गया !**

बाटलीवाला—पर्दा गिरा दो ।

[पर्दा गिर जाता है। हाल में और भी शोर मच जाता है, इतने में बाटलीवाला आकर पर्दे के आगे खड़ा हो जाता है, और लोगों को चुप होने का संकेत करता है। हाल में सन्नाटा छा जाता है।]

बाटली०—सज्जनो ! आप यह सुनकर खुश होंगे, कि हमारी नाटक कंपनी जिस उद्देश्य को लेकर काशी से निकली थी, वह उद्देश्य आपकी नगरी में आकर पूरा हो गया। दीपक बाप को छोड़कर चला आया था, और उसे भूल गया था। मगर बाप का प्यार बेटे को न भूला था। वह प्रतिदिन इस नाटक में बेटे को रो रोकर पुकारता था, और निराश होकर रोता हुआ लौट जाता था। आख़िर आज बेटे के हृदय ने बाप के प्यार की पुकार को सुना, और उसे लेकर बाप के चरणों में उपस्थित हो गया। (तालियाँ) **सज्जनो ! आज से पहले यह नाटक सूरदास के आँसुओं पर समाप्त होता था, आज इस नाटक में सूरदास के आँसू समाप्त हो गए हैं। मेरी भगवान् से प्रार्थना है, कि अब यह पिता-पुत्र कभी अलग न हों।**

[बाटलीवाला सिर झुकाता है, लोग तालियाँ बजाते हैं।]

समाप्त

——